भवन्स नवनीत

दिसम्बर 2020
30 रुपये

समय ... साहित्य ... संस्कृति ...

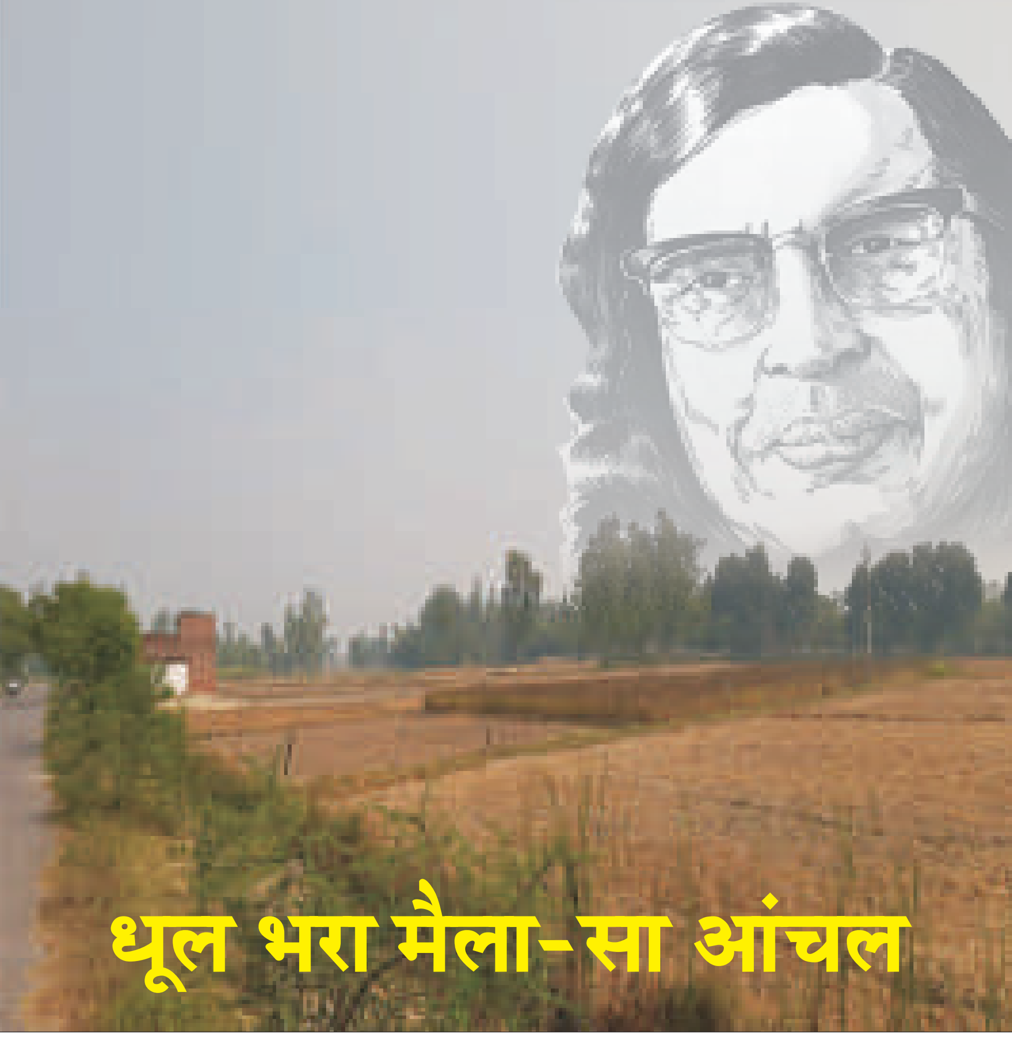

धूल भरा मैला-सा आंचल

VISIT…

LANZAROTE

Caliente.COM

HAVE YOU READ IT?

A classic book on

Kumbha

India's Ageless Festival

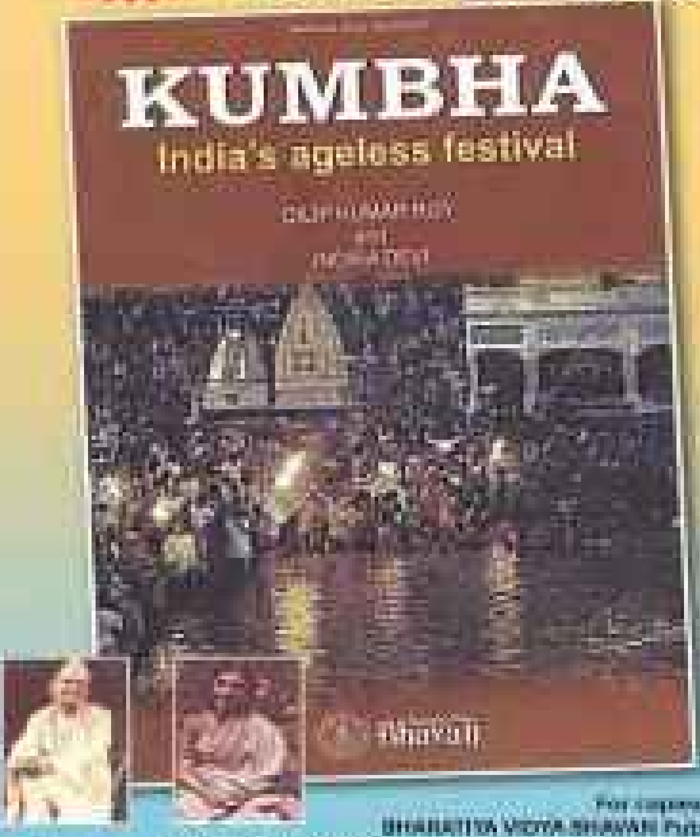
KUMBHA
India's ageless festival
Bhavan

For copies, please contact:
BHARATIYA VIDYA BHAVAN Publication Division
305, Sane Guruji Marg, [illegible] Compound, Tardeo, Mumbai 400 [illegible]
Ph.: [illegible] Fax: [illegible]
E-mail: [illegible]@gmail.com or [illegible]
Website: www.bhavans.info

मनुष्यत्व से देवत्व

व्यक्तित्व का विकास जीवन में रह कर ही किया जा सकता है, जीवन से दूर रहकर नहीं. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध-भूमि में दुर्दम्य शत्रुओं का मुकाबला करते हुए लड़ने के लिए कहा था, उन्होंने उसे जंगल में किसी गुफा में जाने के लिए नहीं कहा. 'तस्मद् युद्धयस्व भारत' उस कायर से नहीं कहा गया था जो जीवन के संघर्ष से भाग खड़ा होता है. आत्मबल के साथ मज़बूती से खड़े होवो, महान आदर्शों और सत्कार्यों के बारे में सोचो; अपनी सीमाओं, राग, क्रोध, ईर्ष्या से ऊपर उठकर अपनी कमियों से मुक्ति पाओ. तब तुम में एक ताकत प्रवेश करेगी, एक सौंदर्य का बोध होगा तुम्हें. जीवन का सर्वश्रेष्ठ आनंद प्राप्त होगा तुम्हें, जिसका उपयोग तुम महान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर सकोगे. पर जीवन का यह रहस्य हमें मिले कैसे? यह उसी विश्वास से प्राप्त हो सकता है जो विश्व से आक्रांत नहीं होता. सभी स्वरूपों में सौंदर्य की पूजा से ही हम में जग सकता है. प्लेटो ने मनुष्य से देवत्व तक के विकास की जो बात कही थी, वह सौंदर्य के विभिन्न आयामों की समझ से ही आत्मसात की जा सकती है– सुंदर स्वरूप से सुंदर जीवन, सुंदर जीवन से सुंदर विचार, सुंदर विचारों से परम सौंदर्य! आओ हम अपनी संस्कृति के मूल्यों को समझें, उन्हें आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालें. हमें इन मूल्यों के चरम स्वरूप को नहीं भूलना है– मनुष्य के रूप में मनुष्य का स्वाभिमान!

(कुलपति के.एम. मुनशी भारतीय विद्या भवन के संस्थापक थे)

विचार और भावनाएं

सम्पूर्ण मानव समाज आज एक अदृश्य शत्रु से युद्ध कर रहा है– कोविड-19 कोरोना वायरस है जो संक्रामक रोग फैलाता है. पूरी दुनिया में पुरुषों और महिलाओं को अपना शिकार बनाने वाले कोविड-19 को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा महामारी घोषित किया गया है.

हमारा मास्क का उपयोग, सुरक्षात्मक सूट, थर्मल कैमरा, सैनिटाइजर और सक्षम दवाएं, शत्रु से प्रभावी रूप से लड़ रही हैं. इस महामारी ने हमें जड़मूल से हिला दिया है. अमीर-गरीब, बूढ़े-जवान, बलहीन-बलशाली– इस वायरस ने किसी को नहीं छोड़ा. इसके सामने सभी असहाय हैं. कई परिवारों के कमाने वालों ने दम तोड़ दिया और कई अन्य जो बच गये हैं, उन्होंने अपने जीवन भर की कमाई खो दी.

हाल ही में खबर आयी है कि वायरस के खिलाफ़ सुरक्षात्मक टीका लगभग तैयार हो चुका है. सम्पूर्ण मानव जाति के लिए यह बहुत ही राहत प्रदान करने वाली आशा की किरण है.

आज, दुनिया स्वास्थ्य देखभाल में अनुसंधान और विकास के लिए लगभग 1.36 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च करती है. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दुनिया भर में स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए 2017 में 8 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च किये हैं. लेकिन नैदानिक उपकरणों, टीकों और दवाओं के विकास में तीव्रता लाने के लिए अधिक निवेश की आवश्यकता है.

भारत को उच्चस्तरीय स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता है. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन और प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना जैसी मौजूदा

योजनाएं पर्याप्त नहीं हैं. स्वास्थ्य शिक्षा और जन जागरूकता के क्षेत्रों में विकास और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, मेडिकल कॉलेज और पैरा-मेडिकल प्रशिक्षण केंद्र स्थापित करने की तत्काल आवश्यकता है. भारतीय चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी) और होम्योपैथी के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए. भारतीय चिकित्सा परिषद के माध्यम से विनियामक तंत्र को इसके दायरे में लाने के लिए उसे व्यापक बनाने की आवश्यकता है ताकि स्वास्थ्य देखभाल श्रमिकों को उचित वेतन का भुगतान किया जा सके जिससे संचालन में उनका उत्तरदायित्व सुनिश्चित हो सके.

स्वास्थ्य देखभाल में निवेश से हमारी अर्थव्यवस्था को लाभ होगा. एक राष्ट्र की ताकत उसके नागरिकों के उत्तम स्वास्थ्य में निहित है. हमें अपनी कमियों से सीखकर सुधार करना होगा. मेरी उम्र को ध्यान में रखते हुए, कोरोना के डर से मुझे अपने घर तक सीमित रहने के लिए मजबूर होना पड़ा है. इससे वास्तव में मैं आजकल कुछ नहीं कर रहा हूं.

प्रकृति के पास बदला लेने के अपने अनूठे तरीके हैं. युवावस्था में मैंने समय बर्बाद किया था और अब समय ने मुझे हिला दिया है. हमें पूरा विश्वास है कि भगवान के आशीर्वाद से कोरोना वायरस अंतत: समाप्त हो जाएगा.

सुरेन्द्र लाल मेहता

(सुरेंद्रलाल जी. मेहता)

अध्यक्ष

भारतीय विद्या भवन

भवन्स
नवनीत
समय... साहित्य... संस्कृति...

69 वर्षों की समृद्ध परम्परा की अगली कड़ी
वर्ष : 6 अंक : 4 ● दिसम्बर 2020

संस्थापक
कनैयालाल मुनशी ◆ श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक
विश्वनाथ सचदेव

सहायक सम्पादक
राधारमण त्रिपाठी

प्रसार - सहायक
आज़ाद आलम
सज्जा - **गौरी कानडे**
कार्यालय सहायक - **हंसमुख परमार**

सम्पादकीय कार्यालय
भारतीय विद्या भवन
क.मा. मुनशी मार्ग, चौपाटी, मुंबई 400007
फ़ोन : 022-23634462/ 1261/ 1554
फ़ैक्स : 022-23630058
प्रसार विभाग : 022-23514466/23530916
ई-मेल : navneet.hindi@gmail.com
bhavansnavneet@gmail.com

एक नज़र

कुलपति उवाच

03 मनुष्यत्व से देवत्व
के.एम. मुनशी

अध्यक्षीय

04 विचार और भावनाएं
सुरेंद्रलाल जी. मेहता

पहली सीढ़ी

11 मैं हिंदुस्तान हूं
धूमिल

धारावाहिक उपन्यास

110 योगी अरविंद (अंतिम किस्त)
राजेंद्र मोहन भटनागर

व्यंग्य

124 जाने वाले हो सके तो लौट न आना
शशिकांत सिंह 'शशि'

शब्द-सम्पदा

136 सत्तू-प्रेम या सत्तू-आसक्ति
अजित वडनेरकर

आवरण-कथा

12 मैले आंचल की छांह
सम्पादकीय
14 रेणु जीवन का ‘अपरूप रूप’ रचते हैं
शिवदयाल
21 रेणु का बचपन
भारत यायावर
33 राग, रंग, गंध की रहस्यमयी दुनिया
जयश्री सिंह
38 ‘साबार ऊपरे मानुष सत्य
ताहर ऊपरे किछु नाई’
42 कितनी खरी थी रेणु की दुनिया
अज्ञेय

आलेख

76 हम ही हैं हिंदू और मुसलमान
अजय ब्रह्मात्मज
80 एक अव्यक्त निवेदन
डॉ. धर्मवीर भारती
83 गुलकी बन्नो
डॉ. धर्मवीर भारती
98 आशा के आसमान में
उमंग की अनकटी पतंग!
हेमंत शेष
129 सांझा पीर
डॉ. नरेश
132 सतत कर्म साधना ही कर्मयोग है
डॉ. राजाराम गुप्ता
138 किताबें

कथा

48 जलवा
फणीश्वरनाथ ‘रेणु’
56 जै गंगा! (रिपोर्ताज)
फणीश्वरनाथ ‘रेणु’
64 नेपथ्य का अभिनेता
फणीश्वरनाथ ‘रेणु’

कविताएं

70 रेणु की कविताएं

समाचार

140 भवन समाचार
144 संस्कृति समाचार

पाठकनामा

एक अरसे बाद जब 'नवनीत' हाथ में आया तो लगा जैसे सौगात मिल गयी है. महात्मा गांधी के संदर्भ में बहुत-सी पत्रिकाओं ने सामग्री छापी है, पर असहयोग आंदोलन को केंद्र में रख कर आपने जिस तरह बापू को याद किया है, वह सचमुच महत्वपूर्ण है. 'नवनीत' जिस तरह गम्भीर चिंतन-परक सामग्री देता है, वह इसे बाकी पत्रिकाओं से कुछ अलग कर देती है. असहयोग को अनुचित के खिलाफ़ खड़े होने का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करना सोचने के लिए प्रेरित करता है. प्रियदर्शन, कनक तिवारी, आर.के. पालीवाला आदि के लेख बहुत अच्छे लगे. **● गजेंद्र शेखावत, जयपुर**

अक्टूबर के 'नवनीत' में प्रियदर्शन का लेख जिन शब्दों के साथ समाप्त होता है, वहीं से मनुष्य की परिभाषा का सवाल खड़ा होता है. देवता जैसा मनुष्य बनना एक अच्छा सपना हो सकता है, पर मनुष्य का मनुष्य बने रहना हमारे समय की और मैं कहूंगा हर समय की, सबसे बड़ी ज़रूरत है. भीखू पारेख का लेख भी सोचने के लिए बाध्य करता है. बहुत अच्छी तरह याद किया है आपने गांधी को.

● गौरव श्रीवास्तव, दिल्ली

नवनीत का अक्टूबर अंक मिला. आवरण कथा के माध्यम से गांधीजी के विचारों और जीवन के ज्ञात-अज्ञात पहलुओं से परिचित होने का और पुनः पढ़ने का मौका मिला. सोशल मीडिया की आधुनिक भेड़चाल के समय में गांधी विचारों को पढ़ना और उन्हें जीवन में उतारना मानो स्वप्न होता जा रहा है. ऐसे में आपकी पत्रिका निरंतर जिस प्रकार प्रतिवर्ष गांधी विचारों को समर्पित अक्टूबर का अंक निकालती है वह हमें भविष्य को लेकर कुछ आश्वस्त करता है. मेरी ओर से इस अंक के लिए साधुवाद.

● कुमार गिरीश, बस्तर

इस लॉकडाउन पीरियड में नवनीत के डिजिटल अंक प्राप्त हुए. डिजिटल अंक पढ़कर वह सुख नहीं मिलता जो छपे हुए अंक को पढ़कर मिलता है. आशा है आप छपे हुए अंक शीघ्र भिजवाएंगे धन्यवाद.

● रोहित सरदाना, नयी दिल्ली

कलाम साहब को पढ़ना और जानना हमेशा ही मेरे लिए प्रेरणास्पद रहा है. उनके जीवन के लिखे गये लगभग सभी पहलुओं को मैं पढ़ चुका हूं. कलाम साहब के जीवन से

जुड़े जिस प्रसंग को आपने अक्टूबर अंक में प्रकाशित किया है वह वाकई जीवन के लिए मार्गदर्शक बन सकते हैं आशा करता हूं वर्तमान पीढ़ी इसे पढ़े और कुछ जीवन में उतारे और बेहतर मनुष्य बनने की दिशा में आगे बढ़े.

● **किशनलाल चौधरी, बीकानेर**

गांधी विचारों पर केंद्रित नवनीत का एक और अंक मिला. इस अंक के लिए आप मेरी बधाई स्वीकारें. मेरे पिता गांधी विचारों के कट्टर समर्थक थे और उनका जीवन उन्हीं के जीवन दर्शन पर केंद्रित रहा. हालांकि मैं व्यक्तिगत रूप से गांधी विचारों का उतना समर्थक नहीं हूं पर वर्तमान समय में उनकी उपयोगिता को नकार भी नहीं सकता. ● **मुरलीधर पांडे, समस्तीपुर**

नवनीत अपनी लेखों के कारण हम सब की प्रिय बनी हुई है. मैं और मेरे पिता नियमित रूप से इसके पाठक हैं. लेकिन देश की राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में हो रही वर्तमान घटनाओं का समावेश इसमें ना होना कहीं इसे पूर्णता से वंचित कर देता है. निवेदन है कि कृपया समसामयिक घटनाओं यथा– राजनीति, खेल, फिल्म, स्वास्थ्य आदि को भी समाहित करें.

● **आचार्य विष्णुदत्त शास्त्री, कानपुर**

भूल-सुधार

नवम्बर के 'नवनीत' में श्रीकांत उपाध्याय की पुस्तक 'दस डिग्री चैनल' के बारे में प्रकाशित आलेख 'काला पानी दर काला पानी' के लेखक रमेश जोशी हैं. असावधानीवश लेख के साथ उनका नाम जाने से रह गया. चूक के लिए खेद है.

● **सम्पादक**

नवनीत के ग्राहक बनिए

प्रति अंक	- 30 रुपये	विशेष अंक (वार्षिक)	- 40 रुपये
एक वर्ष का शुल्क	- 300 रुपये	दो वर्ष का शुल्क	- 580 रुपये
तीन वर्ष का शुल्क	- 850 रुपये	पांच वर्ष का शुल्क	- 1400 रुपये
दस वर्ष का शुल्क	- 2800 रुपये	विदेशों में एक वर्ष के लिए	- 1500 रुपये (समुद्र मार्ग)
		विदेशों में एक वर्ष के लिए	- 2600 रुपये (हवाई मार्ग)

(कृपया चेक / डीडी **'भारतीय विद्या भवन'** के नाम से बनायें.)

इंटरनेट से नवनीत का चंदा भरने के लिए लॉग ऑन करें

http://www.bhavans.info/bookstore/navneet-hindi.php

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वेदो नित्यमधीयताम्।
वेदाः वयं वः शरणं प्रपन्नाः। वेदा ये नः परं धनम्।।

अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब

श्री गोविन्द दीक्षितर पुण्य स्मरण समिति (पंजीकृत)

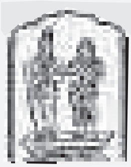

'श्री गोविंद दीक्षिता घटिका स्थानम' 29-30, ईस्ट अयन स्ट्रीट, (प्रवेश योगासलाई मार्ग से) कुम्बकोणम्,
तमिलनाडु-612001 भारत. टेली नं. (कार्यालय) (0435) 2425948, 2401789,
पाठशाला: 2422866, 2401788, Email: rajavedapatasala@gmail.com
Website: www.rajavedapatasala.org

वेद और शास्त्र निहित धरोहर को प्राचीन पारम्परिक गुरुकुल प्रणाली द्वारा सुरक्षित रखने के लिये निवेदन

राज वेद काव्य पाठशाला, कुम्बकोणम् की स्थापना ई.स. 1542 में तीन नायक राजाओं के प्रधानमंत्री **संत अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब भगवान श्री गोविन्द दीक्षितर** ने की. यह तांजोर स्थित पवित्र कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है. जिसका उद्देश्य है वेदों और शास्त्रों का प्रचार-प्रसार. यह तमिलनाडु स्थित पूरे भारत वर्ष में एकमात्र पाठशाला है, जो बिना किसी रुकावट 471 वर्षों से कार्यरत है. यहां निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत तीनों वेद-ऋग्, यजु (शुक्ल और कृष्ण) तथा सामवेद की शिक्षा एक ही संकुत के नीचे 8-12 वर्ष के बाल-विद्यार्थियों को दी जाती है. यहां 155 विद्यार्थियों को छह से दस वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाता है. आवास-निवास, खान-पान, यात्रा व शिक्षा की सुविधा आदि समिति अपनी ओर से मुफ्त में करती है. इन विद्यार्थिओं को पाठशाला के 14 वरिष्ठ अध्यापकों के सान्निध्य में वेद-शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है. वैदिक शिक्षा की सफल समाप्ति पर उन्हें वेद व शास्त्रों की उच्चतर शिक्षा के लिए पाठशाला के विद्वान अध्यापकों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है.

पाठशाला की इन सब गतिविधियों पर होने वाले बढ़ते व्यय के निरूपण हेतु कांची के कामकोटि मठ के श्री जयेंद्र सरस्वती स्वामिगल द्वारा दि. 21-6-2004 को नवनिर्मित पाठशाला भवन **श्री गोविंद दीक्षितर घटिका स्थानम्** (13,500 वर्ग फीट) को वैदिक विद्यार्थियों हेतु समर्पित किया गया.

पाठशाला के बढ़ते हुए खर्च की समस्या कम करने हेतु निम्नलिखित योजनाओं के अंतर्गत अनुदान का स्वागत है, कृपया अपना फोन नं: (STD कोड के साथ) मोबाइल नम्बर/इ-मेल पूरा पत्ता व पिन कोड अवश्य लिखें.

योजना का नाम	अनुदान (आंशिक व्यय)	स्थाई अनुदान
वैदिक विद्यार्थी भोज (समाराधना)		
घरेलू भोजन	रु. 700/-	रु. 9000/-
विशेष समाराधना	रु. 2500/-	रु. 30,000/-
चावल और दाल हेतु - (75 किलोग्राम)	रु. 1600/-	रु. 20,000/-
वेद (शिक्षा एवं संक्षण हेतु) प्रति विद्यार्थी	रु. 12,000/- प्रतिवर्ष	रु. 1,50,000/-

अनुदान क्रास चेक, डी.डी. **'ए.वी.एम.एस.जी.डी.पी.एस. समिति'** के पक्ष में 'कुम्बकोणम्' पर देय होना चाहिए. पत्राचार हेतु उपरोक्त पते पर अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष से सम्पर्क करें.

पहली सीढ़ी

।।आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:।।

मैं हिंदुस्तान हूं

● धूमिल

मैं हतप्रभ-सा खड़ा था
और मेरा हमशक्ल मेरे पैरों के पास
मूर्च्छित-सा पड़ा था

दुख और भय से एक झुरझुरी लेकर
मैं उस पर झुक गया
उसका हाथ ऊपर उठा था
खून और आंसू से तर चेहरा मुस्कराया था
उसकी आंखों का हरापन
उसकी आवाज़ में उतर आया था–
'दुखी मत होवो, यही मेरी नियति है
मैं हिंदुस्तान हूं
जब भी मैंने उन्हें उजाले से जोड़ा है
उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है, तोड़ा है,
मगर समय गवाह है कि मेरी बेचैनी के आगे भी राह है'

मैंने सुना वह आहिस्ता-आहिस्ता कह रहा है
जैसे किसी जले हुए जंगल में
संशयों ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है
फिर भी वे अपने हैं, अपने हैं, अपने हैं
जीवित मनुष्य के सुंदरतम सपने हैं...

तुम मेरी चिंता न करो, उनके साथ चलो
इससे पहले कि वे गलत हाथों के हथियार हों...
उनसे मिलो, उन्हें बदलो!

(लम्बी कविता 'पटकथा' से)

सम्पादकीय

मैले आंचल की छांह

लगभग चार दशक पुरानी बात है. फणीश्वरनाथ 'रेणु' एक साहित्यिक आयोजन में भाग लेने के लिए मुम्बई आये थे. तब कुछ मित्रों ने उन्हें एक गोष्ठी में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया था. तभी मिलना हुआ था उनसे पहली बार, और आखिरी बार. पर आज भी मुझे उनका वह तमतमाता चेहरा याद है जब मैंने उनसे साहित्यकार की प्रतिबद्धता की बात कही थी. तब उन्होंने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उनके लिए प्रतिबद्धता का एक ही अर्थ है– आदमी के प्रति प्रतिबद्धता. उनका कहा यह वाक्य मैं भूला नहीं हूं कि 'मैं मनुष्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं, मेरा लेखन उसी मनुष्य के बारे में है, उसी मनुष्य के लिए है.'

उनके लेखन की बात करते ही उनके दो उपन्यास आंखों के सामने आ जाते हैं– 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा'. 'मैला आंचल' उनका पहला उपन्यास था और इस एक उपन्यास ने तो उन्हें जीते जी एक किंवदंती बना दिया था. देश के शीर्ष साहित्यकार अज्ञेय ने तब रेणु को 'धरती का धनी कथाकार' कहा था. धरती के इस धनी ने देश की ज़मीन और इस ज़मीन से जुड़े जीवन को अपनी चिंता का विषय बनाया. विश्वास नहीं हुआ था लोगों को कि 'मैला आंचल' उनका पहला उपन्यास है– पहली ही रचना में भला कोई इतना परिपक्व कैसे हो सकता है? रेणु ने अपने कृतित्व से सिद्ध किया था कि ऐसी परिपक्वता आ सकती है, बशर्ते अनुभूति में गहराई हो और अभिव्यक्ति में ईमानदारी हो. इसी गहराई और ईमानदारी ने उन्हें प्रेमचंद की राह के अगले चरण का मील का पत्थर बनाया था. मानवीय संवेदनशीलता की एक परिभाषा थे फणीश्वरनाथ 'रेणु'. यही कारण है कि उनका लेखन उन सबको अपना लगने लगा जो मनुष्य की पीड़ा, संत्रास को किसी रूप में भोग रहे थे और उनको भी जो साहित्य के माध्यम से इस त्रासदी

को समझने, इससे उबरने की अव्यक्त कोशिश में लगे थे.

उनके समकालीन, पर लेखन के संदर्भ में एक दूसरे ध्रुव पर खड़े निर्मल वर्मा रेणु की आंचलकिता को कहीं व्यापक संदर्भ में देखते हैं. उनका मानना है कि रेणु के आंचलिक परिवेश के 'भीतर बहती जीवन-धारा' को समझने की आवश्यकता है. अपने आंचल की सीमाओं के उल्लंघन या अतिक्रमण को वे रेणु की आंचलिकता की विशेषता मानते हैं और यही विशेषता उन्हें विशिष्ट और महत्वपूर्ण बना देती है. इन्हीं विशेषताओं ने 'मैला आंचल' या 'परती-परिकथा' को मात्र आंचलिक कृतियों से ऊपर उठा कर उपन्यास का एक नया ढांचा खड़ा करने का उदाहरण बना दिया.

लेकिन क्या इतने सब से ही रेणु महान हो गये? नहीं, रेणु की महानता इसमें है कि उनका जीवन उनके लेखन की प्रामाणिकता दिखाता है. मैले आंचल की छांह में जिस भारत का सपना उन्होंने देखा था, उसे साकार करने की दिशा में वे सतत सक्रिय रहे. उनका जनतांत्रिक मन प्रशासकीय तानाशाही को कतई स्वीकार नहीं कर पाया. जयप्रकाश नारायण की आवाज़ में उन्हें अपने भीतर की आवाज़ सुनाई दी थी. उन्हें लगा उस शासन का सम्मान स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए जो मानवीय मूल्यों का सम्मान नहीं करता– और उन्होंने पद्मश्री वाला पदक सरकार को लौटा दिया. उन्हें लगता था, एक साहित्यकार के रूप में यह उनका सामाजिक दायित्व है कि वे उन मूल्यों और आदर्शों के लिए संघर्ष करें, जिन्हें वे मानवीय सरोकारों का आधार मानते हैं. और यह संघर्ष वे जीवन भर करते रहे थे. सिर्फ छप्पन साल का जीवन मिला था उन्हें. इस छोटी-सी आयु में वे साहित्य और समाज को इतना कुछ दे गये कि आने वाली पीढ़ियां उन पर नाज करेंगी. आज यदि रेणु होते तो सौ साल के हो जाते. उनकी जन्म-शताब्दी के वर्ष में उन्हें याद करके हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ही ज्ञापित कर सकते हैं. धूल भरे मैले आंचल की छांह देने वाले रचनाकार को प्रणाम.

आवरण कथा

रेणु जीवन का 'अपरूप रूप' रचते हैं

● शिवदयाल

कोई दूसरा ऐसा लेखक ध्यान में नहीं आता जिसके हाथ में कलम तो रही ही हो, हल की मूठ भी रही है, और पिस्तौल भी. क्या रेणु अपने जीवनानुभवों के कारण ही इतने विशेष हैं? 'बीमार की दुनिया' कहानी में वीरेन के मुख से रेणु ही तो बोल रहे हैं– 'मैंने ज़िंदगी को आपके जेम्स ज्वॉयस से अधिक पहचाना है. हमारी ज़िंदगी हिंदुस्तान की ज़िंदगी है. हिंदुस्तान से मेरा मतलब है असंख्य गरीब मज़दूर-किसानों के हिंदुस्तान से. हम अपनी मिट्टी को पहचानते हैं, अपने लोगों को जानते हैं. हमने तिल-तिल जलकर जीवन को, जीवन की समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा की है.'

यदि यह रेणु ही बोल रहे हैं तो उनका दावा निराधार नहीं है. उनकी रचनाओं में जो जीवन है, जो विवरण हैं वे इतने सच्चे और प्रामाणिक हैं कि उनके चित्रण के लिए जीवन को उसकी समग्रता में देखना-समझना और उसके प्रति गहरी आसक्ति और अनुराग अनिवार्य है, बल्कि पूर्वशर्त है. उनकी हर कहानी मानो एक कौंध है जिसमें एक अलग जीवन-सत्य का साक्षात्कार होता है. उनकी कहानियां घटना-विशेष, स्थिति-विशेष या केवल पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में ही याद नहीं रहतीं, बल्कि नये जीवन बोध के रूप में हमारे अनुभव और स्मृति का हिस्सा बन जाती हैं. उनकी कहानियां मानो वे खिड़कियां हैं जिनसे हम जीवन के विविध रूपों, चित्र-विचित्र छवियों को निहारते रोमांचित, संवेदित और समृद्ध होते रहते हैं. 'धरती का धनी' कथाकार अपने पाठकों को

संवेदना का धनी बनाता जाता है.

रेणु इतने विशेष क्यों हैं? इसके पीछे उनका अपना जीवन और अनुभव-संसार है. उनके जीवन में राजनीति पहले आती है, लेखन बाद में. उनकी संवेदनापूरित दृष्टि राजनीति के प्रिज्म से गुजरती है और उनकी कलम जीवन की विविधवर्णी छटा बिखेरती है. प्रकृति और परिवेश की प्रत्यक्ष सन्निधि जीवन के अभावों, दु:खों एवं संघर्षों से पार पाने का हौसला तो देती है, 'अपरूप' ही नहीं, अरूप अथवा विरूप के प्रति भी सौंदर्यबोध जगाती है. वरना ऐसे विपन्न, परित्यक्त, कभी प्रकृति तो कभी समाज की मार सहते, अनस्तित्व में जीवन जीते पात्र कथाकाश में इस प्रकार नक्षत्रों की तरह कभी जगमगा सकते? हरगोबिन, सिचरण, करमा, पंचकौड़ी, मोहना, हीरामन, हीराबाई, नैनाजोगिन, दीदीजी, रसूल मिस्त्री जैसे अमर, अविस्मरणीय पात्र रेणु जी ने हिंदी कहानी को दिये हैं. सब अलग-अलग रंग-रूप और गुणधर्म के, लेकिन मानो एक ही चाक से गढ़ी गयी माटी की मूरतें, एक ही मिट्टी की बनीं और जीवन की भट्टी में पकीं!

रेणु के पात्र जो भी हों, उनकी एक अवस्थिति है, लोकेशन है. पात्र अपनी अवस्थिति के साथ ही खुलते हैं, उससे अविच्छिन्न हैं, जिसमें प्रकृति और उसके उपादानों के साथ ही उनकी ऐंद्रिक चेतना और संवेग भी शामिल हैं– रूप, रस, गंध, ध्वनि, गुस्सा, प्यार... यह लोकेशन मानो चराचर सृष्टि का ही एक निदर्शन है जिसमें मनुष्य, जीव-जंतु और पादप-वनस्पति, पर्वत-पठार, नदी-कछार– सब एक साथ हैं, अलग-अलग दिखते हुए भी एकमेव हैं. सच पूछिए तो ये सब कहीं न कहीं कथापात्र बन जाते हैं. रेणु का कथानक मनुष्येतर सृष्टियों को भी अपने घेरे में ले लेता है. हिरामन के साथ उसके बैल भी याद आते हैं, मोहना और पंचकौड़ी मृदंगिया के साथ टिटिहरी की टिहुक-टिहुक भी याद आती है, करमा के साथ प्लेटफार्म पर दुलकी चाल से गश्त लगाता कुत्ता भी याद आता है. देखिए 'पहलवान की ढोलक' में कथाकार का यह प्रेक्षण - 'कुत्तों में परिस्थिति को ताड़ने की एक विशेष बुद्धि होती है. वे दिन भर राख के घूरों पर गठरी की तरह सिकुड़कर मन मारकर पड़े रहते थे. संध्या या गम्भीर रात्रि को सब मिलकर रोते थे. यह मलेरिया और हैजे से पीड़ित गाँव का एक दृश्य है जो (गांव) 'भयार्त्त शिशु की तरह थर-थर कांप रहा था. 'तीसरी कसम' में हिरामन अपने बैलों से जो चाहे करवा लेता है, वह उसका इशारा पाकर एक-दूसरे से बंधे दौड़ लगा देते हैं और उसे पुलिस के चंगुल से छुड़ा लेते हैं. वे उसके कहने पर बाघ-गाड़ी खींचने को भी तैयार हो जाते हैं. हिरामन-हीराबाई संवाद के बीच ही जैसे

उनकी मंशा समझकर हिरामन बैलों को झिड़की देता है– 'कान चुनिया कर गप सुनने से ही तीस कोस मंजिल कटेगी क्या? इस बायें नाटे के पेट में शैतानी भरी है.' उसी प्रकार 'एक आदिम रात्रि की महक' में नये बने आदमपुरा स्टेशन पर करमा 'गश्त' लगाते कुत्ते की नीयत ताड़ता रहता है. फिर दोनों के बीच ऐसा लगाव बनता है कि अंतिम दृश्य में जब करमा बाबू का सामान गाड़ी में चढ़ाता है और इसी बीच गाड़ी सीटी देती है तो करमा देखता है - प्लेटफार्म पर बैठा कुत्ता उसकी ओर देख कूँ-कूँ कर रहा है. .... बेचैन हो गया कुत्ता! और करमा चलती गाड़ी से उतर जाता है. कथाकार रेणु की इन जीव-जंतुओं से प्रीति देखते ही बनती है. 'आदिम रात्रि की महक' में करमा को पीछे छूटे जगहों की याद घेरती है - 'जाने-पहचाने, अचीन्हे, कितने लोगों के चेहरों की भीड़ लग जाती है. ...खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, नदी-पोखरे, चिरई चुरमुन– सभी एक साथ टानते हैं, करमा को! ...सात दिन से वह काला जंगल और ताड़ का पेड़ उसको इशारे से बुला रहे हैं. जंगल के ऊपर आसमान में तैरती हुई चील आकर करमा को क्यों पुकार जाती है? क्यों?' अपनी कहानियों में रेणु पात्र और परिवेश के बीच ऐसी अंतरंगता स्थापित करते हैं कि ये मनुष्येतर जीव– बैल, कुत्ता, चील, टिटिहरी, ढोढ़वां सांप आदि भी कहानियों में पात्र की-सी हैसियत ही पा जाते हैं. उनकी पहली ही कहानी 'बटबाबा (1944) में एक वटवृक्ष एक मानवीकृत पात्र अथवा चरित्र के रूप में ही तो स्मृति में टंक जाता है. इस दृष्टि से देखा जाए तो कहना होगा कि रेणु ज़मीन से जुड़े लेखक नहीं हैं, बल्कि ज़मीनी लेखक हैं– खांटी ज़मीनी लेखक.

रेणु की कहानियों के पात्र अपनी भौतिक और अभौतिक दशाओं के साथ उपस्थित होते हैं, बल्कि अपनी मनोदशा के भी साथ. वे अपने अभावों, संघर्षों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों के अलावा अपनी आदतों, आस्थाओं, परम्पराओं और रूढ़ियों के साथ ही पाठक के समक्ष आते हैं. दुनिया में बहुत कम लेखक ऐसे होंगे जिन्होंने पात्रों की सांस्कृतिक निर्मिति को उभारा है– वह भी कथा कहने के एक सामान्य नियम के तहत. यह एक विशेष अवस्थिति में संभव होता है जो फौरी तौर पर सभ्यता के विकास में पिछड़ गयी या छूट गयी कोई जगह है– देहात, जिसे जवाहरलाल ने तंगहाली, तंगनजरी और जहालत का केंद्र बताया था, लेकिन ये अनगढ़-से, हल्के-फुल्के-से दिखनेवाले चरित्र अपने औदात्य, अपनी उर्ध्वमुखी नि:स्वार्थ चेतना और सुबुद्धि से पाठक को विस्मित कर देते हैं. अज्ञेय के शब्दों में यदि रेणु 'धरती के धनी' लेखक हैं, तो ये पात्र भी धरती के धनी हैं. ये अपना

दुखड़ा गानेवाले नहीं वरन ये पात्र प्राय: वाकपटु और प्रत्युत्पन्नमति सम्पन्न हैं और व्यंजक प्रतिक्रियाएं देते हैं. ये लोगों के साथ-साथ अपना मज़ाक भी बनाते हैं. प्राय: इन्हें जीवन में संगति की तलाश है. लय-भंग से जूझते पंचकौड़ी, हरगोबिन जैसे पात्र वापस जीवन की महालय से जुड़ने की चेष्टा करते हैं, और सफल भी होते हैं. रेणुजी की कहानियों में ध्वनियों की जो महिमा है, वह यूं ही तो नहीं. इनसे कहानियों को एक सांगीतिक प्रभाव मिलता है– कहानी में काव्य का वह विरल गुण जो इसके पहले इस परिमाण में शायद ही देखा गया हो. ये ध्वनि-संकेत अर्थ-सम्प्रेषण की एक युक्ति के रूप में आजमाये गये हैं, दूसरी ओर जैसे बेसुरे जीवन को सुर से जोड़ते हैं, राग-निबद्ध करते हैं. 'आदिम रात्रि की महक' में चील की चीख करमा को मानो एक खास दिशा में चलने का आवाहन कर रही है. वहीं 'रसप्रिया' में कम से कम चार स्थानों पर चील टिंहकारी भरती है, मानो मृदंगिया को चिढ़ाती है, या फिर कोई भूली-सी याद उसके मन में टिंहुकती है. हर बार मृदंगिया चील को झिड़कता है. रेणु के यहां कितनी और कैसी-कैसी ध्वनियां हैं - महीन, कानों में रस घोलने वाली, मोटी, कर्कश, 'भाएं-भाएं, सोएं-सोएं' भी, यानी ऐसी भी जो खुलकर बाहर न आ सकीं. टिटिहरी टिह-टिह करती है, चील टिंहुकरी भरती है, कुत्ता 'बुफ-बुफ' और कूं-कूं करता है, बैलों के गलों में बंधी घंटियों की रुनझुन, रेलवे के गाट साहबों के किसिम-किसिम की आवाज़ों वाले खर्राटे, इंजन की सीटी और जहाज के भोंपू की आवाज़, कर्कशा, कामविकल 'बौमा' की 'फों-फों' ....सियारों का क्रंदन, पेचक की डरावनी आवाज़ और इन सबके अलावा मृदंग की 'धा-तिंग, धा-तिंग' और ढोलक की 'चट् धा गिर धा, चटाक्-चट् धा ....'! 'पहलवान की ढोलक' की 'यही आवाज़ मृत गांव में संजीवनी भरती रहती है– हैजे और मलेरिया से पीड़ित भयार्त गांव में.' इस कहानी में तो ढोलक की थाप से प्रेरित होकर अखाड़े में लुट्टन पहलवान 'शेर के बच्चे' को चित कर देता है.

रेणु की कहानियों में जो सांगीतिकता है, उसके मूल में स्वयं वह ग्राम्य परिवेश है, वह लोक जहां कथा जनम रही है. बिना गीत-संगीत के लोकजीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती. केवल संस्कारों के ही गीत नहीं, कृषि कर्म, और ऋतु-चक्र से जुड़े गीत, संगीत, लोकनाट्य-बिदापत नाच,

दुनिया में बहुत कम लेखक ऐसे होंगे जिन्होंने पात्रों की सांस्कृतिक निर्मिति को उभारा है– वह भी कथा कहने के एक सामान्य नियम के तहत.

रसपिरीया, बिरहा, किरतनियां नाटक, जट-जट्टिन, रास....! एक प्रसंग देखिये– '...पांच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलारस बाकी था. ...पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे-भरे पौंधों से एक खास किस्म की गंध निकलती है. तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी– रस की डली. वे गाने लगते थे बिरहा, चांचर, लगनी. खेतों में काम करते हुए गाये जानेवाले गीत भी समय-असमय का ख्याल कर गाये जाते हैं. रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चांचर और लगनी...

हां...रे, हल जोते हलवाहा भैया रे'...
खुरपी रे चलाने ...म..ज...रू..र...!
एहि पंचे, धानी मोरा है रूसलि.....'

खेतों में काम करते हलवाहों और मजदूरों से कोई बिरही पूछ रहा है, कातर स्वर में– उसकी रूठी हुई धनी को इस राह से जाते देखा है किसी ने? ...अब तो दोपहरी नीरस ही कटती है, मानो किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है (रसप्रिया).' शब्द खो रहे हैं, लय टूट रही है, और अब पंचकौंड़ी यह सब सोचकर और यादकर आहें भर रहा है, ठीक उसी समय चील टिंहुकती है– मानो संगीत के नाम पर यही कुछ बच गया है.

रेणु ने अपनी कहानियों में मातृ-शक्ति को अलग ही ढंग से प्रतिष्ठापित किया है. अनेक मातृविहीन चरित्र ममता का आश्रय ढूंढ़ते हैं और उसकी छांह उन्हें मिलती भी है. 'संवदिया' का हरगोबिन टूअर-टापर, निपट निस्संग व्यक्ति है. काम उसका संवाद पहुंचाना है लेकिन अब उसकी ज़रूरत किसे है. उसे जब हवेली से बड़ी बहुरिया अपने नैहर संदेशा भेजने को बुलवाती हैं तो उनकी दारुण स्थिति देखकर उसे बहुत तकलीफ होती है. दूसरी ओर वह यह सोचता है कि अकेली, उपेक्षित बहुरिया अगर नैहर चली जाएंगी तो गांव से लक्ष्मी चली जाएंगी, पूरे गांव की बदनामी होगी सो अलग. वह चाहकर भी असल संवाद नहीं पहुंचा पाता. लौटकर बड़की बहुरिया के चरण पकड़ लेता है और कहता है कि अब से वह उनका बेटा है, वे मां हैं. उनकी देखरेख और सुरक्षा अब उसके जिम्मे. हरगोबिन बड़की बहुरिया का पुत्र बनकर वास्तव में पूरे गांव की ओर से एक सुरक्षा-वृत्त में उन्हें ले लेता है. 'आदिम रात्रि की महक' में आसाम से लौटती किसी ट्रेन में गोपाल बाबू को लावारिस माल की तरह एक लड़का मिलता है. यही करमचन अथवा करमा बाबुओं के साथ स्टेशन-दर-स्टेशन घूमता कहीं न कहीं अपने मूल की तलाश में भी रहता है. कहानी के अंत में अधमुंदी आंखों से करमा एक सपना देखता है. एक 'अजीब-सी का गंध का पीछा करता वह जाने कहां चला जा रहा है, अतीत की कटु स्मृतियां उसे डरा रही हैं, कोई 'चोर...'

रेणु के यहां दुर्दमनीय 'विट' है, स्थान-स्थान पर, दुःसह स्थितियों में भी, भयंकर निरूपायता में भी वह जीवन-रस छलकता ही रहता है.

कहकर उसके पीछे चिल्लाता है, एक इंजिन उसके पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा है. 'वह डर कर सरसतिया की गोद में ....नहीं, उसकी बूढ़ी मां की गोद में अपना मुंह छिपाता है. करमा एक गंध के समुद्र में डूब जाता है, यह वास्तव में ममता की सुगंध है 'तीसरी कसम' का नायक हिरामन भी मातृविहीन है लेकिन उसकी भौजाई ही उसके लिए मां है– उसके सुख-दुःख की हिस्सेदार, वही उसका ठौर है. एक गजब की कहानी है 'पहलवान की ढोलक'. इसका मुख्य पात्र लुट्टन पहलवान है जो केवल नौ वर्ष की आयु में अनाथ हो जाता है. शायद यह पहली कहानी होगी, कम से कम मेरी नजर में एकमात्र कहानी, जिसमें एक नौ सा के बच्चे को उसकी सास (!) पालती है. उसे गांव के लोग दुःख देते रहते हैं, इसका बदला लेने के लिए ही लुट्टन पहलवान बन जाता है. अपनी सास से हुए दुर्व्यवहार का बदला लेने के लिए शायद ही कहीं कोई कथा-पात्र ऐसे सामने आया हो.

रेणु का कहन, उनका उक्ति-वैचित्र्य पाठक को चमत्कृत करता है जो निश्चय ही उनके अनुभव-वैचित्र्य से आया है. वे कथा ही नहीं बुनते, नये पद भी गढ़ते चले जाते हैं. हिंदी कथा साहित्य को उन्होंने दर्जनों नये विशेषणों एवं क्रियापदों से समृद्ध किया है, कुछ तो मुहावरे भी दिए हैं, कुछ नमूने– अगरजानी, अपरूप रूप, मदक्की, चूल्हचन, मिरतूभुवन, पटपटांग, फेनुगिलासी बोली, इस्की आदमी, इनकिलास जिन्दाबाघ, पेट माधोराम मर्द ...आदि-आदि. कहानी की भाषा के संदर्भ में 'तीसरी कसम' में हिरामन की यह उक्ति सटीक बैठती है– 'कचराही बोली' में दो-चार सवाल-जवाब चल सकता है, दिल खोलकर गप तो गांव की बोली में ही की जा सकती है.' उनके पात्र दिल खोलकर अपनी बोली-बानी में गप करते हैं, उनके यहां औपचारिक कुछ भी नहीं, बनावटी तो बिल्कुल नहीं. उनकी भाषा में हिंदी, मैथिली, मगही, भोजपुरी और बांग्ला की मिलीजुली छौंक है. इसमें हिंदी संज्ञा-विशेषणों का वह बिगड़ा हुआ अथवा भ्रंश रूप भी शामिल है जो ग्रामीण लोग बोलते-उच्चारते हैं. रेणु के यहां दुर्दमनीय 'विट' है, स्थान-स्थान पर, दुःसह स्थितियों में भी, भयंकर निरूपायता में भी वह जीवन-रस छलकता ही रहता है. कभी यह परिस्थितियों की उपज होती है तो कभी पात्रों के निश्छल व्यवहार का नतीजा. यह

‘विट’ रेणु की कहानियों में कलुष की छाया नहीं पड़ने देता, उन्हें रससिक्त बनाये रखता है. रेणु कैसा रसपगा सौंदर्य रचते हैं, देखिए– ‘हिरामन का जी जुड़ा गया. हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकालकर दिया. इस्स! धन्न है, धन्न है! हिरामन ने देखा, भगवती मैया भोग लगा रही हैं. लाल होठों पर गोरस का परस!....पहाड़ी तोते को दूध-भात खाते देखा है?..’ पाठक ठगा रह जाता है..!

उनकी कहानियों के विवरण जो भी हैं, वे प्राय: प्रत्यक्ष देखे-सुने हैं, फर्स्ट हैंड हैं, आत्मानुभूत हैं. जो जैसा है, दृष्टि की परिधि में वह दर्ज हो रहा है, कथा में उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति हो रही है. जीवन में यदि दु:ख-दारिद्रय है, भेदभाव और हकतलफी है तो वह कथा-कहानी में भी है. मृदंगिया जैसी कहानी में भी एक बहरदार ब्राह्मण के बच्चे को ‘बेटा’ कहकर अपमानित होता है. ‘पहलवान की ढोलक’ में जब लुट्टन दंगल जीत जाता है तो राजा श्यामनंद उसे लुट्टन सिंह पुकारते हैं. जब उनका ध्यान दिलाया जाता है कि जाति के दुसाध को सिंह बुलाना ठीक नहीं, तो राजा कहते हैं– काम उसने क्षत्रिय वाला ही किया है. ‘पंचलाईट’ एक अद्भुत कहानी है जिसमें जातीय टोलों में बंटा गांव दिखाई देता है. यहां मानो विभाजन के तीखेपन को कम करने के लिए उसे पाटने के लिए हास्य-व्यंग्य का जबरदस्त इस्तेमाल हुआ है. जिस ‘विट’ की बात की गयी, वह यहां प्रचुरता में उपस्थित है. रेणुजी ने राजनीतिक पृष्ठभूमि की कहानियां भी लिखीं, देश-विभाजन पर भी उनकी कहानियां हैं– ‘इतिहास, मजहब और आदमी’, ‘रेखाएं-वृत्तचक्र’, ‘खंडहर’ आदि. वहीं नेपाल की पृष्ठभूमि पर ‘रखवाला’ और ‘नेपाली क्रांति कथा’ जैसी कहानियां हैं. खासी विविधता है कहानियों में जबकि ज्यादातर कहानियां कोसी अंचल की हैं. इनमें किसान हैं, मजदूर हैं, गाड़ीवान हैं, भैंसवार हैं, लोक कलाकार हैं, बुनकर और दस्तकार हैं, राजे और ज़मींदार हैं, क्रांतिकारी और नेता हैं, छुटभैय्ये कार्यकर्त्ता हैं... नैना जोगिन है, हीराबाई है, सरसतिया और उसकी मां है, बौमा है, मानो है... और है लाल पान की बेगम!

हिंदी की कथा-भूमि को कोसी, सप्तकोसी, के जल से सींचकर मानो रेणु ने उसे और उर्वर और प्राणवान् बना दिया, रचनाशीलता का एक नया उन्मेष उत्पन्न कर दिया. उनकी कहानियां जिजीविषा की कहानियां हैं - राग-रंग-रस की कहानियां हैं. उनके पात्र और उन पात्रों के कार्य-व्यापार एक ही साझी, सामूहिक चेतना की अभिव्यक्तियां हैं. उनके हृदय प्रेम और करुणा से भरे हैं. दु:ख-दैन्य-रोग से जूझते भी ये पात्र जीवन का ‘अपरूप रूप’ रचते हैं, मानवीयता का प्रतिमान गढ़ते हैं. ❑

रेणु का बचपन

● भारत यायावर

रेणु के पूर्वज बंगाल के मालदा जिले के हरिश्चंद्रपुर नामक गांव से पूर्णिया के हिंगना नामक गांव के करीब बसे थे. चूंकि वे और ही यानी दूसरे गांव से आकर बसे थे, इसलिए उनके कुनबे को लोग अलगाव की दृष्टि से देखते थे और औराही टोला कहते थे. इस तरह उनके टोले का नाम ही बाद में औराही पड़ गया. उनके पूर्वजों में जानकी मंडल के बारे में ज्ञात है. इन्हीं जानकी मंडल के पुत्र हुए अमृत मंडल, जो रेणु के दादा थे.

अमृत मंडल अपने इलाके के सबसे कुशाग्र बुद्धि के सात्विक व्यक्ति थे. उनकी शादी हुई और दो बेटे हुए– शिलानाथ और दिलानाथ? इसके बाद उनके जीवन में एक घटना हुई. उनके एक मित्र थे चैतन्य. उनमें वैराग्य की भावना कबीर के भजन गाते-गाते हो गयी और उन्होंने संन्यास धारण कर लिया. लेकिन भरी जवानी में अपनी पत्नी और अपार खेती-बारी की ज़िम्मेदारी भी अमृत मंडल को कसम दिलाकर सौंप दी. उन्होंने मित्र-धर्म का पालन किया और अपनी ज़िम्मेदारी का भी. इस मित्र की पत्नी से उन्हें एक बेटा भी हुआ. जब उनके तीनों बेटे बड़े हुए, तभी उनकी मृत्यु हुई. लेकिन अमृत मंडल विद्यानुरागी थे. उन्होंने शिलानाथ मंडल को अररिया में रखकर मैट्रिक तक की पढ़ाई करवाई.

शिलानाथ मंडल की शादी औराही-हिंगना के करीब के ही एक गांव गीधवास में पन्ना देवी से हुई. गीधवास को रेणु जी ने बाद में 'गीतवास' नाम दिया. पन्ना देवी को सब पानो कहते थे. यह रेणु की मां थी.

शिलानाथ मंडल का सम्बंध अररिया में रहते हुए अनेक बंगाली परिवारों से हो गया था. विद्वानों के साथ सत्संग करना उन्हें अच्छा लगता था. वे हिंदी और बांग्ला की पत्र-पत्रिकाएं नियमित मंगवाया करते और मननपूर्वक पढ़ते. स्वाधीनता की लहर उनके भीतर भी समाहित हो गयी थी. वे गांधीजी के आंदोलन में पूरा सहयोग करते. उस समय आर्य-समाज का जाति तोड़ो आंदोलन शिखर पर था. वे आर्य समाजी

होकर इसमें शरीक हो गये. अपनी आत्म-रचना में रेणु ने लिखा है- रामायण, महाभारत, प्रेमसागर, पंचतंत्र आदि मोटे ग्रंथों के अलावा हर सप्ताह आनेवाली पत्र-पत्रिकाओं की याद आती है... वेंकटेश्वर समाचार, रंगपुर पत्रिका (बंगला), सैनिक, प्रताप, प्रवासी (बंगला), हिंदू पंच, विश्वमित्र, विशाल भारत और हितैषी.

अर्थात् शिलानाथ मंडल अपने अंचल के सबसे अधिक जानकार, ज्ञानी और स्वाधीनता-संघर्ष से जुड़े हुए व्यक्ति थे. रेणु के भीतर की रचनात्मक प्रतिभा को विकसित करने में सबसे बड़ा योगदान उन्हीं का था. रेणु ने अपने पिता के बारे में लिखा है– पिताजी किसान थे और इलाके के स्वराज-आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्त्ता! खादी पहनते थे, घर में चरखा चलता था, 'तिलक स्वराज फंड' वसूलते थे और दुनिया भर की पत्र-पत्रिकाएं मंगाया करते थे. मैंने जबसे होश संभाला, अपने को पत्र-पत्रिकाओं से घिरा पाया.'

यहां रेणु ने पहले की बतायी पत्र-पत्रिकाओं में कुछ और भी दो नाम जोड़े हैं– कर्मवीर और चांद.

शिलानाथ आर्य समाजी बने थे, लेकिन रामचरित मानस और बांग्ला के कृतिबास 'रामायण' का नियमित पाठ करते थे. वे बात-बात में उदाहरण के रूप में इनकी पंक्तियों को उद्धृत किया करते थे.

पूर्णिया जिले में जो भी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम होते शिलानाथ उसमें सक्रिय भाग लेते और चंदा भी दिया करते. उनके इलाके से सटा हुआ है नेपाल का मोरंग जिला. मोरंग जिले का शहर है विरासगर. यहीं कृष्णप्रसाद कोइराला रहते थे और शिक्षा का अलख जगा रहे थे. शिलानाथ उनके इस पुनीत कार्य में भी योगदान करते.

1918 ई. में शिलानाथ मंडल और पन्नो देवी की पहली संतान के रूप में एक बेटी का जन्म हुआ. शिलानाथ ने उसका नाम लतिका रखा, लेकिन गांव-घर के लोग उसे लुटकी कहते. इसके तीन वर्ष बाद रेणु का जन्म हुआ.

रेणु के जन्म को लेकर कई तरह के किस्से हैं. कुछ किस्से स्वयं रेणु के बनाये हुए हैं, पर उनकी मां भी प्राय: एक किस्सा सुनाया करती थी.

वह रात अब तक याद है, मां को. अचानक ऐसा लगा जैसे कहीं दूर से उसकी बुलाहट हो रही है. वातावरण शांत, निस्पंद लेकिन आकर्षक था. उसके चतुर्दिक फूलों के पांवड़े बिछे हुए थे. हल्की-हल्की सुगंध बिखेरती वातावरण को मोहक बनाती शीतल बयार. मां को मीठी नींद आ रही थी. लेकिन स्वप्न में मानो स्वर्ग उतर आया था धरती पर. अचानक एक आवाज़ उभरती सुनाई पड़ी और वह मंत्रमुग्ध-सी आवाज की ओर चल पड़ी. अब मानो वह

परियों की दुनिया में आ गयी थी. मंदिर में घंटे की टन-टन की आवाज़ उसके कर्ण-कुहरों में प्रवेश कर रही थी. बीच-बीच में बहुत ही शांत और गम्भीर आर्ष-पुरुष की आवाज़ उसे अपनी ओर खींच रही थी और वह बढ़ी जा रही थी स्वयं उसकी ओर.

रास्ता लम्बा था लेकिन दूरी का पता ही न चला. ध्वनि निरंतर स्पष्ट होती जा रही थी– टन्-टन्-टन्, आ.....ओ! आओ! आओ!

ध्वनि के पास पहुंचकर मां ठिठकी. सामने एक गुरुकुल था, जिसमें कई शिष्य विद्याध्ययन कर रहे थे. उन्नत ललाट, तेज़ और ओज से गम्भीर मुद्रा में एक गुरु श्रद्धापूर्वक उठ खड़े हुए, 'आओ देवि! तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था. इधर देखो, यह बालक तुम्हारा ही पुत्र है.'

गुरु ने एक तेजस्वी, प्रतिभासम्पन्न बालक की ओर इशारा करते हुए कहा, 'मैंने इसे सम्पूर्ण शिक्षा दे दी है. मेरा काम पूरा हो गया है. अब तुम इसे अपने साथ ले जाओ!'

'मेरा पुत्र!' पन्ना देवी को आश्चर्य हुआ. उसने पूछा– 'यह क्या कह रहे हैं महाराज? मेरा तो कोई पुत्र नहीं! हां, एक पुत्री अवश्य है जो कि मेरे पास है. यह कैसी अनहोनी बात है. भला मैं किसी और के बच्चे की मां कैसे हो सकती हूं.'

'नहीं देवि! तुम चौंको मत. मैं सच कहता हूं. मेरे ऊपर विश्वास करो. यह तुम्हारा ही पुत्र है. इसे ले जाओ.'

'लेकिन यह कैसे हो सकता है?' मां पन्ना देवी कतई मानने को तैयार नहीं थी. उसके दृढ़ स्वर में प्रतिकार था.

'तुम्हें इस बालक को ले जाना पड़ेगा. अपने साथ. अब मैं पल भर के लिए भी इसे अपने आश्रम में नहीं रख सकता.' गुरु की वाणी में दृढ़ता के साथ ही एक अनुनय भी था.

मां पन्ना देवी अवाक्! यह कैसी मुसीबत है प्रभु! पलटकर वह घर की ओर दौड़ने लगी. वह लस्त-पस्त थी. सांसें फूल रही थीं. वह ज़ोरों से हांफ रही थी. गुरु की वह गम्भीर वाणी. घंटे की आवाज़– दोनों पीछा कर रहे थे. और उसी रात एक बालक ने उसके गर्भ में प्रवेश किया.

पन्ना देवी के मन पर इस स्वप्न का गहरा प्रभाव पड़ा. वह जीवन भर लोगों को इस स्वप्न-कथा को बताती रहीं. अपने पोते पद्मपराग राय वेणु को भी बचपन से रेणु की जन्म-कथा का अनोखा वृतांत बार-बार बताया करती थीं. उन्हें गर्व होता था कि उनके गर्भ में जो बालक पल रहा है, वह सब कुछ पढ़ा-लिखा, गुनी और मुनि है. नौ महीने गर्भ के हो गये पर मुनि जी का धरती पर आरोहण नहीं हुआ. मां की प्रतीक्षा. एक-पर-एक दिन बीतते गये. मां अधैर्य होती गयी. दस महीने भी बीत गये. शिलानाथ मंडल कई वैदों से पूछ

आये. वैदों ने नाड़ी देखकर बताया कि सब कुछ सामान्य है. कई दवाइयां दीं. ग्यारहवें महीने के अंतिम दिनों में शुक्रवार के दिन 21 मार्च, 1921 को मुनि जी का जन्म हुआ. पन्ना देवी अपने पुत्र को देखकर निहाल हो गयी.

अपने जन्म की कथा दिलचस्प अंदाज़ में रेणु ने भी लिखने की कोशिश की है. यह कथा कल्पना और यथार्थ के अद्‌भुत मिश्रण के साथ तैयार की गयी है.

रेणु मशहूर नकबेसर का किस्सा का एक गुटका लिख रहे थे. यह अद्‌भुत रचना है, जिसके सार को मैं प्रस्तुत कर रहा हूं. इसे पढ़कर तुलसीदास के शब्दों में कहा जा सकता है– जिमि मुख मुकुर, मुकुर निज पानी, गहि न जाहि अस अचरज बानी.

ऐसी अचरज भरी वाणी का प्रयोग रेणु ही कर सकते थे, क्योंकि वे एक ऐसे विलक्षण जातक थे, जिसे देखकर चित्रगुप्त महाराज भी चिंता में पड़ गये कि इसको कहां भेजा जाए. शिलानाथ जैसे परोपकारी, परदुखकातर, स्वाधीनता प्रेमी, विद्याव्यसनी और उनकी पत्नी पन्ना देवी जैसी सरल हृदय, साध्वी, आध्यात्मिक, व्रती महिला को ध्यान में चित्रगुप्त महाराज ज़रूर रखते होंगे.

रेणु लिखते हैं– तब श्री चित्रगुप्त ने चिंतातुर होकर एक लम्बी सांस ली और हिंदुस्तान के नक्शे की ओर देखा. अपने लेखनशाला के लेखपालों की ओर मुड़कर बोले– नहीं, इस जीव का जीवन-लेख मैं खुद ही लिखूंगा. मुझे ही लिखना होगा! फिर कुछ देर चिंतन-मनन करने के बाद भारतवर्ष के मानचित्र में, बिहार प्रांत के पूर्णिया जिले के एक उजाड़-झाड़-झंखाड़ और जंगली इलाके की भूमि पर, उंगली डालकर बोले– यहां, इस गांव में एक ऐसे जीव को भेजा जा रहा है जो एक ही साथ– सुर और असुर, सुंदर और असुंदर, पापी और विवेकी, दुरात्मा और संत, आदमी और सांप, जड़ और चेतन– सब कुछ होगा! धरती की मांग पर इसे विशेष रूप से भेजा जा रहा है.

अत: 04 मार्च, 1921 ई., शुक्रवार को उस उजड़े औराही-हिंगना गांव में जब आम की डालियां मधुमयी मंजरियों से झुक गयी और फगुनिया हवा– मधु से माती- धूम मचाने लगी तो नकबेसर लेकर उड़ भागने वाला कागा अचानक अमंगल की आशंका से अशुभ और डरावनी ‘भाखा’ में– क्-क्-क्, कां-आं-आं-यं- बोल उठा. कि, उसके चोंच से (रतन जड़ित) नकबेसर छूटकर धरती पर गिरा और त्राहि-त्राहि कर उठा... एक अंधकूप घर के घुप्प अंधेरे में इलाके की मशहूर डायन-बूढ़ी की जलती हुई निगाह कुछ ढूंढ़ने लगी तथा अपनी पतोहू के कोख से निकली हुई संतान को पुल्लिंग पाकर परम प्रसन्न हुई. किंतु, उसकी धतूरे के बीज जैसी

काया को देखकर घृणा से मुंह बिचकाती हुई बोली– अरे, यह धतुरिया कहां से आ गया?

इस जीव का पहला नाम 'धतुरिया' सुनकर चित्रगुप्त महाराज परम प्रसन्न हुए थे. वे इस विचित्र जीव की लीला ध्यान से देख रहे थे. छट्ठी की रात तक चित्रगुप्त जी लेखनी थामकर बैठे रहे. श्रीमान् धतुरीनाथ को छट्ठी के एक दिन पूर्व से ही छींकें आने लगीं.

और बच्चे की आवाज़ जब बिल्ली के मरियल बच्चे की तरह सुनाई पड़ने लगी तो उसके छह दिन के बाप से नहीं रहा गया. भुटिया घोड़े पर सवार हुआ– ऐड़ लगाई और घोड़ा हवा हो गया. सफेद रंग का वह तीव्रगामी घोड़ा! शहर पहुंच, गोपाल बाबू डॉक्टर को सब हाल सुनाया और उनके पास विनय की मुद्रा में हाथ जोड़कर खड़ा रहा. डॉक्टर गोपाल बाबू ने सब हाल सुनकर आलमारी से एक बोतल निकाली, जिसपर लोहे के तार में जाली मढ़ी हुई थी. और लेबुल पर अंग्रेज़ी में एक कलापूर्ण दस्तखत किया हुआ था.

दवा की शीशी घर में पहुंची कि चूहे के बच्चे की तरह चीं-चीं करते हुए शिशु के चेहरे पर अचानक एक चमक खेल गयी. आश्चर्य दवा की पहली बूंद मुंह में पड़ने के पहले ही वह मुस्कुरा पड़ा– आंखें मूंदे ही! मनचाही चीज़ आ गयी! उस दिन गिनकर चार बूंदें जो उसे चटाई गयी, उसमें अमृत की एक ही बूंद थी. बाकी, तीन बूंदों में जहर की आग थी, जिसे नवजात नीलकंठ ने अपने नन्हें कलेजे पर झेल लिया– छठी की आधी रात को!

तब श्री चित्रगुप्त जी महाराज मुस्कुराए और विहंसते हुए कहा– इस शैतान संत की जीवन-कथा अवश्य ही मद-मधु और हलाहल में बारी-बारी से लेखनी बोरकर लिखने योग्य है!

और चित्रगुप्त ने रेणु का जीवन-चरित्र लिख दिया. उसे मिटाना रेणु के लिए भी सम्भव नहीं था. उनके स्क्रिप्ट के अनुसार वे अपना अभिनय करते रहे. लेकिन चित्रगुप्त को लेखक बनकर चुनौती देनी थी. दादी ने जो धतुरियानाथ पहला नामकरण किया और छठी के दिन चूंकि 'जातक' ने दूध के बदले 'नीट' यानी निखालिस जॉन एक्शा नम्बर वन पान किया, इसलिए छह वर्ष की उम्र से ही शीशी बोतल में रखे हर तरल पदार्थ को पीने की चीज समझने लगा.

यह रेणु की जन्म की कथा है. रेणु की मां पन्ना देवी उन्हें मुनिजी ही कहतीं और समझतीं. मुनिजी का ही नाम मनमोहन हो गया. आगे चलकर इस नाम को जीवित रखने के लिए रेणु ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कितने चौराहे' में अपना नाम मनमोहन रखा. यह उपन्यास यानी 'कितने चौराहे' में रेणु ने अपने ही बचपन के कई जीवन-प्रसंगों को समाहित कर दिया है.

लेकिन मुनीजी को होना था रिनुआ. शिलानाथ मंडल को जमीन के लिए कई मुकदमे लड़ने पड़ रहे थे. वकीलों को लगातार फीस देना एक किसान के लिए मुश्किल काम था. उन्हें कर्ज लेना पड़ा. यह पहली बार हुआ. उन्होंने अपनी मां से कहा कि अपनी ज़िंदगी में पहली बार मुझपर ऋण का बोझ चढ़ा, वह भी बेटे के जन्म के बाद. और दादी ने अपने पोते का ही नाम रिनुआ रख दिया.

रिनुआ धीरे-धीरे छह महीने का हो गया. लेकिन खतरा टला नहीं था. मौत की छाया रेणु के ऊपर फिर मंडराने लगी. अचानक भीषण बुखार चढ़ आया. ज्वर से तपता शरीर! लगा, प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे. अमावस्या की उस रात में दादी ने बच्चे को अपनी गोद में लेकन गांव के उत्तर में स्थित विशाल बरगद के पेड़ के नीचे ले जाकर लिटा दिया और दंडवत कर बोली– हे बट बाबा, रच्छा करो! इसे ले जाना है तो ले जाओ, अभी ही ले जाओ! रखना है, तो 'राजी-खुशी' रखो.

और बट-बाबा ने अपनी काया से ढेर सारी प्राणवायु उलीचकर बच्चे को स्वस्थ कर दिया. पहली बार रिनुआ को धरती पर लिटाया गया था. उसकी काया में नवस्पंदन समा गया.

एक दिन रामदेनी तिवारी अपने स्कूल के लिए चंदा लेने आये. शिलानाथ मंडल बहुत खुश हुए. उन्होंने तिवारी जी का आदर-सत्कार करते हुए अपने पुत्र को आशीर्वाद देने का आग्रह किया. रूनझुन करते रिनुआ जी आये. तिवारी जी ने अपनी गोद में बिठाकर सिर सहलाकर आशीर्वाद दिया. रिनुआ नाम सुनकर तिवारी जी ने कहा कि रिनुआ नहीं इसे रेणु कहा करें.

रेणु कहना तो मुश्किल था लेकिन गांव-घर के लोग रेनू, रेनुआ, रिनुआ ही पुकारते रहे.

उनके पिता के दूर-दूर तक सम्पर्क थे. वे बनारस में काशी विश्वनाथ के दर्शन करने भी कई बार जा चुके थे. वहां के कई महामहोपाध्याय पंडितों का आशीर्वाद भी ले चुके थे. उन्होंने ज्योतिष के एक आचार्य से रेणु की कुंडली बनवाई तथा रेणु का नामकरण करने को कहा. उन्हीं के कहने पर रेणु का नाम फणीश्वरनाथ रखा. शिलानाथ मंडल को यह नाम अजीब लगा. उन्होंने इसका अर्थ पूछा.

आचार्य ने बताया कि फणीश्वर शेषनाग को कहते हैं. शेषनाग काल का एक नाम है. काल में अंतर्निहित चेतना ही फणीश्वरनाथ है.

शिलानाथ ने आचार्य के दिये हुए नाम को सहर्ष ग्रहण किया. लेकिन ज्योतिषाचार्य की बनायी हुई दस गज की कुंडली को मोड़कर उठा पाना भी मुश्किल था. संस्कृत में लिखी हुई इस कुंडली को बढ़िया से

बंधवाकर इसे अपने घर में सुरक्षित रख लिया. रेणु जब बड़े हुए और संस्कृत भाषा में पारंगत हो गये तब इसका विधिवत अध्ययन किया. उन्होंने अपनी कुण्डली के कुछ अंशों को 'परती : परिकथा' में लिखा भी है–

अथ..... दशभ्यां..... फलम्- धर्मेकुबुद्धिर्बहुवैभवादयः प्रलम्बकंठो बहुशास्त्रीपाठी. उदारचित्तो नितरां विनीतो रम्यश्च कामी दशमीभवः स्वात्...'

अपनी कुंडली में लिखी विशेषताएं रेणु में कितनी थीं, यह तो बाद में पता लगेगा. लेकिन लिखा तो ऐसा ही गया था. बड़े होकर वे अपने कुंडली को पढ़ते थे और मंद-मंद मुस्काते थे.

फणीश्वरनाथ ऐसा नाम था कि उसका अर्थ तो कोई क्या बूझेगा, उसका शुद्ध उच्चारण करना भी मुश्किल था. गांव के लोग फनीसर, फुलेंदर, फुनेसर आदि कहते. कोई पढ़ा-लिखा उनके घर आता तो फणींद्रनाथ, फणीचंद या फनेंदर कहता. फणीश्वरनाथ उच्चारण करना ही मुश्किल था. इसीलिए इस मुश्किल से बचने के लिए रेणु या रेनू ही कहकर लोग पुकारते.

मुंडन के पहले रेणु के सिर में जटाओं की भरमार थी. लोग उनकी जटाओं का तमाशा देखने के लिए कहते- अरे रेनुआ! जब हवा चलती है तो पेड़ में लगी इमलियां कैसे झूलती हैं?

रेणु जैसे-जैसे बड़े हो रहे थे अपनी अजब-गजब बातों से लोगों के सामने चकाचौंध पैदा करते जाते. उनका मुंडन करवाने के लिए दादी ने मदनेश्वर स्थान जाने को गछा हुआ था. गछा हुआ था यानी दादी ने प्रण किया था. उनके केश लम्बे हो गये थे. कंधी करना भी मुश्किल होता. कंधी नहीं करने से लट में जट हो गये थे. रेणु अपने बालों के बारे में बताते हैं– यों बाल मेरा बचपन से ही 'लब्बड़-झब्बड़' रहा है. पांच साल की उम्र तक, मेरे सिर पर इमली के गुच्छे की तरह जटाएं लटकती थीं. 'बाबा मदनेश्वर' की मनौती! मुझे याद है, खूब धूमधाम से मेरा मुंडन-संस्कार हुआ था. लेकिन, उस हंसी-खुशी के दिन मैं दिन भर रोता रहा था, बलिदान के 'छागल' की तरह.

लेकिन मुंडन के पहले रेणु के सिर में जटाओं की भरमार थी. किसी तरह जटाजूट को बांधकर रखा जाता. लोग उनकी जटाओं का तमाशा देखने के लिए कहते- अरे रेनुआ! जब हवा चलती है तो पेड़ में लगी इमलियां कैसे झूलती हैं? जरा दिखाओ तो लेमनचूस देंगे. और रेणु मियां लेमनचूस के लालच में सिर नचाकर और सिर की जटाएं हिलाकर दिखाते– ऐसे! उनकी जटाएं मानों इमली के गुच्छे हों! वे जब हिलतीं तो देखनिहार की

आंखें जुड़ा जातीं. लोग खुश हो जाते. इस बाललीला पर उनके मन में वात्सल्य का संचार हो जाता. हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाते.

रेणु के बालों को लेकर तरह-तरह की मजेदार कहानियां हैं. लम्बे बाल और नाम रेणु– लोग प्राय: उन्हें लड़की समझ लेते. और वे लज्जित हो जाते.

रेणु के बाद जब उनकी छोटी बहन का जन्म हुआ तो दादी के साथ वे सोने लगे. दादी उन्हें कलेजे से लगाकर रखती. बच्चे में तरह-तरह की जिज्ञासा उठती और दादी कोई किस्सा कहानी बताकर शांत कर देती. हर पशु-पक्षी की एक अपनी कहानी है. दादी तरह-तरह के किस्से सुनातीं. लोकगीत गातीं.

एक दिन घर के पिछवाड़े में आम के पेड़ पर पीले रंग के पंखों वाली एक चिड़िया दिखाई पड़ी, अजीब तरह की आवाज़ निकालती हुई– घेर-घेर-घेर-घेर! रेणु ने दादी से पूछा– यह क्या है ?

दादी ने बताया कोहबर रांड़ी! रेणु दिनभर कोहबर रांड़ी रटते रहे. यह खूबसूरत चिड़िया उनके मन से निकलती ही नहीं थी. रात को दादी से खोद-खोदकर पूछते रहे– इसका कोहबर रांड़ी नाम क्यों है?

दादी बताती कि जब शादी होती है तब एक कमरे में दीवार पर चित्रकारी करके शुभ दाम्पत्य जीवन की शुभकामना लिखी जाती है और वहीं वर-वधू को सुलाया जाता है. इसे ही कोहबर कहते हैं. रांड़ी उस दुल्हन को कहते हैं जिसका पति मर चुका हो. एक लड़की थी. बहुत सुंदर! गांव का एक लड़का कुंवारे में ही उसका सतीत्व भंग कर चुका था और नहीं चाहता था कि उसकी शादी किसी और लड़के से हो. इस लड़के से उस लड़की को घृणा हो गयी थी. और वह लड़का इसी लड़की से शादी करना चाहता था. लेकिन उस लड़की की शादी एक बहुत ही सुन्दर लड़के से हुई. जैसे ही दुल्हे को कोहबर गृह में रखा गया, पलंग के नीचे वही शैतान छुपा था. वह अचानक बाहर निकला और दुल्हे की गरदन काटकर भाग गया. वह लड़की कोहबर में ही रांड़ी यानी विधवा हो गयी. वह जोरों से चिल्लाई घेर-घेर-घेर यानी पकड़ो-पकड़ो, वह देखो भागा जा रहा है हत्यारा! रेणु कोहबर रांड़ी की दुखभरी कहानी सुनकर रोते रहे. दादी तरह-तरह की कहानियां सुनातीं-चिड़िया-चुरमुन की, परियों की, राक्षस की, पेड़ों की, डायन की, राजा-महाराजा की. इन कथाओं का रेणु के बालमन पर गहरा असर पड़ता. वह बालक कल्पना की एक अनोखी दुनिया में प्रवेश कर रहा था, एक जादुई दुनिया!

औराही-हिंगना के उत्तर दिशा में एक विशाल बरगद का पेड़ था. गांव के सब लोग उसे बट बाबा कहते. वह एक देववृक्ष था. सबको आशीष देता रहता था. लोग

जब दुखी होते, विपत्ति से घिरते, बट बाबा से मन्नत मांगते. दादी रोज रेणु को लेकर बट बाबा के पास जाती और साष्टांग दंडवत कर बट बाबा से प्रार्थना करती– मेरे पोते की रक्षा करना बाबा! रेणु भी दादी के साथ दण्डवत प्रणाम करते.

बड़े होकर रेणु जब लेखक बने तो जब भी अपने बारे में लिखने बैठते, बट बाबा की याद आती. वे बताते हैं– जब भी अपने बारे में लिखने की बात मन में आती है, मन के पर्दे पर एक ही छवि 'फेड इन' हो जाया करती है : एक महान् महीरुह..... एक विशाल वट-वृक्ष..... ऋषि-तुल्य, विराट् वनस्पति! फिर, इस छवि के ऊपर 'सुपर इम्पोज' होती है दूसरी तस्वीर : जटाजूटधारी बाबाजी की गोद में किलकता एक नन्हा शिशु!! और तब अपने बारे में कुछ लिखने की बात मन से दूर हो जाती है. क्योंकि इस वृक्ष को बाद देकर अपनी कहानी लिख पाना मेरे लिए असम्भव है.

बड़े होकर रेणु ने लेखनारम्भ किया तो उनकी पहली कहानी 'बट बाबा' नामक छपी. लेकिन वे अपने गांव के बट बाबा का सुमिरन करते हुए ऐसी-ऐसी बातें बताते कि लोग उन्हें गप्प हांकने वाला बताते. गप्प हांकने वाला यानी झूठी बातें करने वाला. ऐसा करने वाले को 'लुच्चा' भी कहा जाता. उनके गांव में एक कहावत प्रसिद्ध थी– लुच्चा मारलक बेंग, डेढ़ पसेरी के एक्के टांग. अर्थात् ऐसे गप्प मारने वाले लुच्चा ने एक मेंढक का शिकार किया, जिसकी एक टांग ही डेढ़ पसेरी की थी. पांच सेर की एक पसेरी होती है. डेढ़ पसेरी यानी साढ़े सात सेर! ऐसे गप्पी की बातों पर कौन भरोसा करेगा? लेकिन वह यथार्थ भी एक मिथक की तरह लगता.

रेणु अपनी दादी से विभिन्न तरह की आवाज निकालने वाली चिड़ियों के बारे में पूछते रहते. परम जिज्ञासा से भरे मन को उनकी दादी शांत करती. करकरा या कर्रा नामक काली और लम्बी टांगवाली मौसमी चिड़ियों की टोली की सामूहिक कर्कश आवाज़ सुनाई पड़ती तो दादी बताती कि ज़रूर पेड़ के नीचे कोई जानवर आया होगा, इसलिए करकरा की टोली इस तरह किलकिला रही है– कर्र-कर्र-कां-हां-स! कर्र-कर्र...... अर्थात् यहां क्यों आया है चल हट-हट-हट!

वट बाबा के ऊपर रात भर बैठकर 'रतजगा' करने वाले पक्षियों में उल्लुओं की एक जमात होती. बड़े आकार के उल्लू को घुघ्घू कहते हैं क्योंकि उनकी आवाज 'घुघ्घू-घू-ऊ-ऊ-ऊ' एक मनहूस वातावरण का निर्माण करती है. रेणु बताते हैं कि आनेवाली मौत की मौन पगध्वनि को सबसे पहले घुघ्घू ही सुनता है और अपनी आवाज से चेतावनी देता है. इसकी बोली सुनकर अपने प्राणों की रक्षा के

लिए लोग अपने इष्टदेव का सुमिरन करने लगते. यह पक्षी रात में 'टाइम कीपर' का भी काम करता और रात में हर प्रहर के बाद एक बार बोलता. बरगद के पेड़ पर रहने वाले घुघ्घुओं में एक 'पेंचक' नामक प्रजाति ऐसा होता था, जो अनैतिक काम करने वालों को सजा देता. रेणु के बचपन में दो घटनाएं घटीं. एक बार एक ओझा-तांत्रिक गांव के बाहर 'चौबटिया' पर 'चक्र' पूजकर एक नवयौवना कुमारी लड़की के साथ बलात्कार करने की कोशिश कर रहा था. एक पेंचक ने तांत्रिक के गाल का मांस नोंच लिया था. एक बार एक चोर कटहल चुरा रहा था. पेंचक ने उसकी ललाट पर चोंच मारकर गहरा छेद कर दिया था. इन दोनों की मृत्यु हो गयी थी. इस बात की चर्चा लम्बे समय तक गांव में होती रही थी. रेणु के बाल-मन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा था.

अपने बचपन के बट बाबा को याद करते हुए रेणु कूंखनी चिड़िया के बारे में बताना नहीं भूलते. वे बताते हैं कि इसकी बोली, गोद के बच्चों के लिए, अशुभ और अमंगलकारी समझी जाती है. कूंखनी की बोली कराहते हुए रोगी शिशु की आवाज़ जैसी सुनाई पड़ती है. इसकी बोली को सुनते ही संतानवती माताएं अपने शिशुओं को छातियों से चिपका लेती हैं और तब कूंखनी चिड़िया को एक अश्लील गाली देकर उसकी बोली के 'दोख' को काटती है– चुप्प छिनाल! यहां कहां से करवाके आयी है ? कहीं और जाके......

उस वट बाबा के तले राही-बटोही और बनजारे गाड़ीवानों का दल सुस्ताता. कभी शादी और गौना की बारात गुजरती. दुलहिन की पालकी बरगद के नीचे रुकती. पूरा गांव देखने जमा हो जाता. होली से लाली-लाली दुलहिनिया बाहर आती और धरती पर माथा टेककर दंडवत करती. पालकी जब उठने लगती तब गांव के बच्चे ताली बजाकर एक स्वर में गाने लगते– लाली-लाली डोलिया में लाली रे दुलहिनियां!

नन्हीं दुलहिन कुछ वर्षों के बाद गोद में एक नवजात बच्चा लेकर लौटती. तब, एक बार फिर वट बाबा के पास टप्परवाली बैलगाड़ी रुकती. छाती से अपने कलेजे के टुकड़े को सटाए, नयी अल्हड़ मां गाड़ी से उतरती– दुहाय बट बाबा! बरगद पर बैठी खोंपावाली चिड़िया उस सुंदर लड़की को देखकर बोलती– चुम्मा दे दे!

चिड़ियों की जाति, नाम, रंग, वर्ण, स्वभाव, आने-जाने का मौसम, उनकी बोलियों का परिचय बचपन से ही दादी रेणु को करवाती रहती. बरगद की डालियों पर पक्षियों का कूंजन-कलरव होता रहता और इनसे घनिष्ट रिश्ता बचपन से ही रेणु का हो रहा था, जो उनके भावी कथाकार में एक नया रंग भर रहा था. वट बाबा

के ऊपर एक भरा-पूरा संसार था, जिसे रेणु बचपन से ही आत्मसात कर रहे थे. इस देवता स्वरूप वृक्ष पर उन्होंने कभी गिद्ध या बगूलों को बैठते नहीं देखा, लेकिन उसके कोटरों में विषधर सांपों की जब फुंफकार सुनाई पड़ती, तब दादी समझाती- देवहा पेड़ पर सांप तो रहेगा ही.

रेणु गांव में एक विशाल पोखर है. कहा जाता है कि एक रानी ने उसे बनवाया था और अपनी सम्पत्ति को सोना-चांदी तथा हीरे-जवाहरात में बदलकर, उस पोखर में छुपाकर रखा था. रानी की स्मृति में उसका नाम ही रानी पोखर हो गया. उसके बीच में अष्टधातु से निर्मित एक कलश के ऊपर शालवृक्ष का एक लाट गाड़ा गया था. इस पोखर को भी गांववाले पूज्य दृष्टि से देखते. दादी रेणु को बताती कि रानी पोखर में वरुण देवता का वास है. इसी पोखर के कारण गांव की धरती हरी-भरी है.

औराही-हिंगना के धनखेतों के पार ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ एक जंगल था और उसके बाद एक बंजरभूमि का विस्तृत मैदान, जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगाजी के किनारे खत्म हुआ है. लाखों एकड़ परती जमीन. इस पर दूब भी नहीं पनपती. बीच-बीच में बालुचर और कहीं-कहीं बेर की झाड़ियां. लगता जैसे राजस्थान के किसी क्षेत्र में आ गये हों. बचपन से रेणु के मन में ये सभी परिदृश्य मन के पर्दे पर चलते रहते थे. उनकी कथा-रचनाओं में आगे चलकर ये सभी समाहित होते गये.

बरसात के बाद रानी पोखर में प्रवासी पक्षियों का बड़ा समूह आकर निवास करता. 'परती : परिकथा' के प्रारम्भ में रेणु ने इसका विस्तृत चित्रण किया है. रेणु लिखते हैं– सफद बालुचरों में चरने वाली हंसा-चकेवा की जोड़ी रात्रि की निस्तब्धता को भंग कर किलक उठती है कभी-कभी. हिमालय से उतरी परी बोलती है- केक्-कें-एं-एं-गां-आं, केंक! हिमालय के परदेशी पक्षियों की टोलियां, नाना जाति-वर्ण-रंग की जोड़ियां प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में हिमालय पहाड़ से उतरती हैं- हहास मारती हुई. फिर फागुन-चैत के पहले ही लौट जाती हैं. भूली-भटकी एकाध रह जाती है जो कभी-कभी उदास होकर पुकारती और अपनी ही आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनकर, विकल होकर, पांखें पसारकर उड़ती और पुकारती जाती है– केंक्-केंक्-कें-एं-एं!

रेणु बचपन से ही तरह-तरह की चिड़ियों और पखेरूओं से आत्मीय हो रहे थे. दूसरी ओर लोककथाओं और लोकगीतों में उनका मन रमता चला जा रहा था. वे बताते हैं कि 'मैं लोकगीतों की गोद में पला हूं. इसलिए हर मौसम में मेरे मन के कोने में उस ऋतु के लोकगीत गूंजते रहते हैं. मैं कहीं भी हूं– इन लोकगीतों

की स्मृति-ध्वनियां मुझे अपने गांव में– कुछ क्षण के लिए पहुंचा देती हैं. अगहन शुरू होते ही पके हुए धन-खेतों की अगहनी सुगंध के लिए मन मचलता है. अलाव तापते हुए– खलिहान में दबनी के लिए आये हुए लोगों से बातें करने की बड़ी इच्छा होती है. ढलती हुई लम्बी रात, 'शुरुकवा' (शुक्र) तारा उगते ही नींद उचट जाती है. खलिहान में दबनी शुरू हो गयी. 'प्रातकी' गीत की पहली कड़ी मंडरा रही है. पवित्र-धुन प्रातकी– जिसे अगहन से माघ तक, शुरूकुवा तारा उगने के बाद गाते हैं. भोर को बाद गाये जाने वाले गीतों में प्रातकी के बाद 'बिकय' की याद आती है. श्रावणी पूर्णिमा से आरम्भ करके कृष्णाष्टमी की भोर में– खोल-करताल बजाकर यह बिकय गीत गाया जाता है. काली घटाओं में लुका-छिपी चांद भादो के भरे हुए पोखर-तालाब में तैरता हुआ दिखाई पड़ता है, और फिर, तुरंत ही झड़ी लग जाती है. ऐसे क्षणों में बिकय गानेवालों का मूलगैन (मुख्य गायक) अलाप उठता है...... लोकगीतों में ऐसे भी गीत हैं जिनके गाने का समय वर्ष में सिर्फ एक घंटा निर्धारित है. होली और फगुआ के गाने फागुन की अंतिम घड़ियों तक, और चैत के प्रथम क्षणों में चैती शुरू करने के पहले– एक घंटा. फागुन-चैत की संधिवेला में गाये जानेवाले इस गीत को 'बसकर' कहते हैं. इस गीत में फागुन की मस्ती की हल्की 'खुमारी' और चैती की मीठी-मीठी उदासी मिली-जुली रहती है.

ऐसे-ऐसे रंग-बिरंगे और विचित्र लोकगीतों की गोद में पलता हुआ उनका बचपन आगे बढ़ रहा था और प्रकृति के विभिन्न रूपाकारों से सतत अनुभव सम्पन्न बनता जा रहा था. ❑

बोलो प्रभु, कब सुनोगे

शताब्दियों से लोग सुनने के उत्सुक चले आ रहे हैं. वेदकालीन पुरुष प्रार्थना करता है, श्रृणवाम शरदः शंत. वेदांती, नादब्रह्म को सुनने के लिए आंख मीच कर, कान भी बंद कर मौन प्रतीक्षा में आसनस्थ है. और इस दिशा में सबसे अधिक उपलब्धि उन कवियों को हुई है जो इधर सृष्टि का निखिल मौन संगीत सुनते रहे, प्रेमिका का मूक स्वरों में अनुरोध भी. और आज तो हमें कोई सौ बातें सुनाता है, कोई सुना-सुना कर कुछ कहता है और हमारी कहीं सुनवाई नहीं होती. फिर भी हम अनुरोध करते हैं, 'बोलो प्रभु, कब सुनोगे.' यह अन्याय आप देख रहे हैं? अर्थात सुन रहे हैं? कि प्रभु ही बताएंगे कि हम कब बोलें. यह इसीलिए कि हम सुनने के आदी हो गये हैं और सुनना हीन है, बोलना श्रेष्ठ. – **रघुवीर सहाय**

राग, रंग, गंध की रहस्यमयी दुनिया

● जयश्री सिंह

ध्वनित होते शब्द राग, रंग और गंध की एक रहस्यमयी दुनिया में भी ले जा सकते हैं इसकी अनुभूति मुझे फणीश्वरनाथ 'रेणु' के साहित्य को पढ़ते हुए हुई. कहानियों को पढ़ते समय शब्द दर शब्द सहज सुनाई दे जाती ध्वनियां अपने पीछे गंध की एक विशेष पहचान छोड़ जाती हैं. उस गंध को ध्वनि के अगले चरण के पते के रूप में पाते हुए मैं ध्वनियों की दिशा में आगे बढ़ती जाती हूं. ध्वनि और गंध के तालमेल में चलती हुई पूरी कहानी एक समूचे लोक परिवेश को बुनती जाती है. रेणु जी की सारी कहानियां इसी प्रकार एक रिदम को ले कर चलती हैं. कथावस्तु और भाषा से सम्मोहित व्यक्ति उन्हीं ध्वनियों के पीछे चलता हुआ कभी चकित, कभी भयभीत तो कभी रोमांचित हो उठता है. कहानी हो या रिपोर्ताज़ उनकी रचनाओं में पात्रों से अधिक यही ध्वन्यात्मक संकेत बोलते हैं. ये कहीं राग, कहीं रंग तो कहीं गंध में उतरते हैं. वहां पूरा परिदृश्य इन्हीं संकेतों के इशारों पर उभरता है. उन संकेतों में जगह-जगह जुगनुओं की चमक-सी गूंज कर ये ध्वनियां लुप्त हो जाती हैं और पाठक अगली ध्वनि से परिचय पाने की इच्छा में आने वाले शब्दों के पीछे चलता चला जाता है. लगभग सारी कहानियों में प्रतिध्वनित होती ये ध्वनियां कहीं दिशा दिखाती हैं तो कहीं भ्रम का सम्पूर्ण परिदृश्य रचती हैं. इन्हीं ध्वनियों में उलझते हुए पाठक अचानक गंध की एक अनोखी दुनिया में प्रवेश कर जाता है.

जन्मशताब्दी वर्ष के बहाने जब रेणु जी के साहित्य का पुनर्पाठ शुरू हुआ तब मैंने उनकी कुछ कहानियों को पहली बार पढ़ा. वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी उन कहानियों में जगह-जगह सुनाई दे जाती ध्वनियां राग-रंग की गहराई में उतरती गयीं. उनके शब्द एक-एक कर जैसे-जैसे खुलते गये वैसे-वैसे ध्वनि और गंध की एक विस्मयकारी दुनिया में बदल गये. उन्हें पढ़ते हुए ये लगातार महसूस होता रहा कि उनकी लेखनी में तरह-तरह की गंध और ध्वनियों का एक विशाल साम्राज्य है और शायद यही वो सम्मोहन है जो उनकी रचनाओं में लोकजीवन को पूरी जीवटता के साथ रचता है.

समय कितना ही आधुनिक क्यों न हो जाये किंतु वर्षों के अंतराल में एक ऐसा पड़ाव ज़रूर आता है जहां से मुड़ कर अतीत में देखना ही पड़ता है. विकास की राह में बाधक बन कर आयी इस अजीबों-गरीब महामारी ने अनपेक्षित रूप से हमें देश और दुनिया से काट कर अलग-थलग कर दिया. जिस समय बेरोजगारी और बेरुखी की मार सह रही देश की एक बड़ी आबादी भूख से बिलबिला गयी, इत्तेफ़ाक़न उसी वर्ष रेणु जी को खूब पढ़ा गया. वैसे तो हिंदी में महामारी पर बहुत कम लिखा गया, लेकिन जितना भी लिखा गया उसमें रेणु जी द्वारा सबसे अधिक लिखा गया.

उनकी रचनाओं में कहीं अतिवृष्टि तो कहीं बीमारी महामारी की लहर बन कर उठती रही. अपनी पहली कहानी 'बट बाबा' में रेणु जी ने बीमारी और अंधविश्वास पर खुल कर बात की है. उनके बचपन के दिनों में छाया हुआ पांचमुंहा बुखार मलेरिया और हैजा से अधिक बट बाबा की कृपा और कोप से आता और जाता रहा. ये बुखार गांव के गांव को लाशों के ढेर में बदल देता था. पूरा गांव जब देर रात हड्डियों तक उतर आये बुखार में कंपकंपाता, अंधकार में सूखी हुई देह की करुण सिसकियां जब रह-रह कर सुनाई दे जातीं, तब वट वृक्ष से आ रही डरावनी ध्वनियां मौत की सूचना बन कर द्वार खटखटातीं. ये चकित कर देने वाली बात है कि कहानी में वर्णित एक अकेले पेड़ से आ रही ध्वनियां दिन और रात के सुहावने और डरावने परिदृश्य को अकेले रच देती थीं. दिन के समय में मधुर बोली बोलने वाली चिड़ियों का कलरव-कूजन रात आठ बजे के बाद डरावनी आवाज़ों में बदल जाता. रात के सन्नाटे में पेड़ से निशाचर पंछियों की कभी कर्कश तो कभी डरावनी ध्वनियां गूंज जातीं जिसे सुन कर बुखार में तपती संतानों की माताओं के कलेजे कांप जाते. देर रात उन आवाज़ों के आतंक और अध्ययन ने बचपन में लेखक की नींद उड़ा दी. शायद यही वो समय था जब 'बट बाबा' कहानी में साथ चलने वाली ध्वनियों ने लेखक के मानस में पनप रही रचनात्मकता में ध्वनियों की संकल्पनाओं को स्पेस दिया.

रेणु जी की रचनाओं में रात और अंधेरे का अपना ही साम्राज्य है. शायद ही कोई रिपोर्ताज़ अथवा कहानी ऐसी हो जो रात के अंधेरे पक्ष के गुजरे बिना पूरी हो पायी हो. किसी रात अंधेरे में कोसी, पनार, महानंदा और गंगा का पानी नर्तन करता हुआ गांवों पर से गुज़र जाता और सुबह दूर तक बिखरे नर और पशु मुंडों से गांवों में हुए जान-माल के नुकसान का पता चलता. अंधेरे में गंगा की लहरें हहराती, घहरती, पछाड़ खाती और फुफकारती हुई तेज़ी में गांवों घरों के

कोनों तक घुस कर जनजीवन की खुशहाली को बहा ले जातीं. रात के अंधेरे में तैरते उस श्मशान पर कई तरह की ध्वनियां तैरतीं—बाढ़ के पानी की किलोल करते हुए बढ़ते जाने की ध्वनियां, कुत्तों-सियारों और पालतू पशुओं के सामूहिक क्रंदन की ध्वनियां, कई तरह की भयानक ध्वनियों के साथ कहीं ढोल और मंजीरों की थाप पर राहत देती ध्वनियां.

मौत वाली उन रातों में ढोलक की थाप बुखार और भुखमरी से जर्जर हो चुके शरीरों को रात की भयावनी ध्वनियों से बचाने का काम करतीं. रात्रि की विभीषिका में पहलवान के ढोलक की थाप गांव के अर्धमृत, औषधि-उपचार विहीन लोगों में प्राण के बचे रहने की संजीवनी शक्ति भरती थी. रचनाओं में जगह-जगह आ रही तरह-तरह की ध्वनियां कभी भय और उन्माद का रूप धर लेतीं तो कभी 'जय गंगा, जय कोसी' की सामूहिक प्रार्थना बन कर उभरतीं.

ढोलक और मंज़ीरे की 'धागिड़गिड़ चकैके चक धुम-चक धुम' की तान रात के अंधकार में जीवन के बचे रहने का संकेत करती. मन बहलाव और एकजुटता का संदेश देती हुई ये ध्वनियां बाढ़ से बचे हुए कंपित शरीरों में साहस भरने का काम करतीं. आज कोरोना महामारी के इस दौर में रेणु जी के ढोलक की ध्वनि की जगह शहर भर की अंधेरी सड़कों पर सायं-सायं कर दौड़ती एम्बुलेंस ने ले ली है. जो निरोगी देह को नींद में खलल डालने के कारण भयावनी सी लगती है और रोगियों के लिए पहलवान की ढोलक की तरह जीवन के बच जाने की उम्मीद जगाती है.

चाहे ढोलक की थाप हो या गंगा-कोसी का पानी रेणु जी की रचनाओं में दोनों की अपनी विशेष धुन है. रचनाओं में किसी जगह महामारी निशाचर पंछियों की आवाज़ में आती है तो कोसी और गंगा भूरे रंग का फेन लिए 'ता-ता थैया धिंन तक धिंन्ना छम्मक कट छम' की धुन में नाचती हुई आती है. सर्वग्रासी महमत्ता रहस्यमयी प्रकृति का जलप्लावन नृत्य 'ता-ता, थेई थेई' उनकी कई रचनाओं में गुंजायमान होता है. विविध ध्वनियों को रचने वाले रचनाकार ने अपने रिपोर्ताज़ में एक जगह ये भी स्वीकार किया कि तुमुल तरंगिनी के तरल नृत्य और उससे गुंजित वाद्य की ध्वनियों को शब्दों में बांध पाना सम्भव नहीं, अर्थात रचनाओं में आ रही ये ध्वनियां कोरी कल्पना नहीं. यह अनुभूति के साथ रचनाओं में उतारी जाने वाली सार्थक संकल्पना है.

ध्वनियों की तरह उनकी कहानियों में गंध के भी कई-कई रूप हैं. कभी मादक तो कभी किसी विशेष उपस्थित की अनुभूति कराती तीव्र गंध. लोक जीवन में हर प्रकार की गंध उनकी कहानी की एक

अनूठी पहचान बनाती है.

'पुरानी कहानी नया पाठ' रिपोर्ताज़ में काली कोसी में गेरुए रंग के पानी अर्थात बाढ़ के पानी की गंध है. बूढ़े चरवाहे की गाय नदी का पानी पीते ही पहाड़ के पानी की गंध को पहचान कर अपने झुंड के साथ दूर भाग कर खड़ी हो जाती है. उस गंध को सूंघ लेने के बाद एक भी पशु घास पर मुंह नहीं लगा पाता. 'एक आदिम रात्रि की महक' में चूना और वार्निश की गंध नायक को सोने नहीं देती. 'हर जगह का अपना खुशबू-बदबू होता है.' कहानी में गंध के लिए कहा गया संवाद 'गंध' के संयोजन पर विशेष ध्यान खींचता है. कहानी का नायक सोते-जागते गंध के समुद्र डूबा रहता है. कभी मछली की गंध, कभी चूने की गंध तो कभी दूर से आती किसी तीव्र गंध को खोजता हुआ उस दिशा में दौड़ा चला जाता है और अगले छोर पर झबरे केश वाली एक बेनहाई स्त्री की देह की गंध से भर जाता है.

रेणु जी अपनी रचनाओं में जीवन के साथ-साथ जीवन के राग, रंग, स्वाद और गंध को घोल देना बखूबी जानते थे. चम्पा के फूलों की गंध, बाघ गाड़ी की तीव्र बघाइन गंध, खेतों से आ रही धान की गंध, पर्व के पावन दिनों में गांवों से आ रही पवित्र गंध लोक जीवन के समूचे परिवेश को सजीव बना देती है. नदियों के किनारे-किनारे मेड़ों पर हवा में सूखती लहराती नववधुओं की लहराती लाल, गुलाबी चुनरियों की मादक गंध ग्रामीण जीवन के सुख-दुख का सौंदर्य बिखेरती है. उनकी कहानियां दृश्यों के साथ-साथ गंध को भी रचती चलती हैं. उनकी रचनाओं में बाह्य जगत के वर्णन से अधिक ध्वनि और गंध के संकेतों में कथा अपना विस्तार पाती है. इस दृष्टि से रेणु जी लोक नायक ही नहीं लोक कथाकार भी हैं. अपने रिपोर्ताजों में कई जगह चित्रकार नज़र आते हैं. उनकी कलम से निकले चित्र चलचित्र के बेतरतीब चित्रों से कभी शब्दों में तो कभी संकेतों में उभरते चले जाते हैं– चारों ओर पानी ही पानी. दूर एक 'द्वीप' जैसी उथली ज़मीन पर चींटी-चींटे से लेकर सांप-बिच्छू और लोमड़ी-सियार तक पनाह ले रहे हैं. बाढ़ में डूबे हुए कई गांवों के लोग पिछले कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसाकर खा रहे हैं. नाव ले कर आये हुए लोग गांव के बीमारों को नाव पर चढ़ाकर कैंप ले जा रहे हैं. लगातार कई दिनों से पानी में रहने के कारण तलवों की चमड़ी सड़ चुकी है. खुजलाहट और दर्द से परेशान लोग राहत पहुंचाने वाली नावों से 'पकाही घाव' की दवाई मांग रहे हैं.

बाढ़ के आने का चित्र बाढ़ के बाद के चित्रों से भी अधिक सजीव बना है. पश्चिम की ओर, थाना के सामने सड़क पर मोटी डोरी की शक्ल में मुंह में झाग-फेन लिए

पानी बढ़ रहा है. पानी के साथ-साथ चलता हुआ किलोल करता हुआ बच्चों का एक दल..., नहीं, बच्चे कहां? पानी. मोड़ के पास अवरोध में उछलता हुआ पानी. चारों ओर शोर-कोलाहल-कलरव-चीख-पुकार और पानी का कल-कल रव. लहरों का नर्त्तन. सामने की दीवार की ईंटें जल्दी-जल्दी डूब रही हैं. ताड़ के पेड़ का तना क्रमश: डूबता जा रहा है, डूब रहा है. बिजली के खम्भे का काला हिस्सा डूब गया. बाढ़ के इन दृश्यों को लेखक ने अपने बचपन से देखा है. उन दृश्यों को देखते हुए उन्होंने हर बार ये चाहा कि यदि उनके पास एक कैमरा होता तो वे इन तस्वीरों को कैद कर लेते. 'कुत्ते की आवाज़' रिपोर्ताज़ में एक जगह उन्होंने लिखा भी है कि 'यदि अभी मेरे पास एक मूवी कैमरा और टेप-रेकॉर्डर होता!' तो शायद बाढ़ के उन दृश्यों को वे हू-ब-हू रिकॉर्ड कर लेते. लेकिन कौन कहता है कि दृश्य रेकॉर्ड नहीं हुए. कलमकार ने चित्रकार की भांति अपने रिपोर्ताजों में उन दुर्लभ चित्रों को जैसा चाहा वैसा उतार लिया है! ❑

जलकुम्भी

एक नया उपन्यास लिख रहा हूं, जलकुम्भी शीर्षक थे. आपने जलकुम्भी तो देखी होगी. उसे देखकर नीचे को जल की तरलता का आयास भी नहीं होता. मज़े की बात यह है कि इस जलकुम्भी की जड़ें कहीं होतीं. सिर्फ ऊपर ही ऊपर छायी रहती है. ठीक ऐसी ही एक जलकुम्भी सभ्यता हमारे समाज में भी पनप रही है. यह आज़ादी के बाद की देन है. आज़ादी के बाद एक नया वर्ग बना है जो गांवों से तो सर्वथा उखड़ चुका, पर शहरों में अभी उसकी जड़ें जमी नहीं हैं और ये लोग शहरी सभ्यता के ऊपर छाने की कोशिश करने लगे है. कोई ग्रामीण विधायक बन कर शहर में आ जाता है, पर उसका गंवईपन गया नहीं है. अभी भी गांव से दही के मटके और चिडूरा की गठरी चली आ रही है. और इधर खेतों की कमाई से आधुनिक सुख-सुविधा के साधन खरीदे जा रहे हैं. इसका अंजाम यह है कि न घर के रहे हैं न घाट के. गांव से कट गये, शहर ने स्वीकारा नहीं. जलकुम्भी की तरह बिना मूल के फैलते जा रहे हैं.

– रेणु

‘साबार ऊपरे मानुष सत्य ताहर ऊपरे किछु नाई’

‘प्रतिबद्धता... ... ...’ रेणु जी ने मेरी बात पूरी नहीं होने दी. ‘किस प्रतिबद्धता की बात कर रहें हैं आप’ उन्होंने ज़रा तैश में कहा, ‘मैं प्रतिबद्धता का केवल एक ही अर्थ समझता हूं– आदमी के प्रति प्रतिबद्धता, बाकी सब बकवास है.’ मैं उनकी ओर देखने लगा.

वे उसी तैश में बोलते रहे, ‘प्रतिबद्ध लोग कहते हैं, बढ़े हुए पांव, उठे हुए हाथ ही काफी नहीं हैं. वे दिखाना चाहते हैं कि उठे हुए हाथ में झंडा किस रंग का है... यह कैसी प्रतिबद्धता है?’

आदमी के प्रति स्वयं को प्रतिबद्ध बताने वाले हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार श्री फणीश्वर नाथ रेणु ने यह बात अपने बम्बई प्रवास के दौरान कही थी. मालाड के एक गेस्ट हाउस के कमरे में उस समय मेरे अलावा दो तीन और साथी भी थे. और सबने देखा रेणु का संवेदनशील साहित्यकार उस दिन उनके चेहरे पर स्पष्ट झलक आया था. साथ ही साहित्य को व्यवसाय बनाकर उसे भुनाने वालों के प्रति उनकी पीड़ा भी बातचीत के दौरान छलक-छलक पड़ती थी.

रेणु जी बिहार आंदोलन से सीधे जुड़े हुए हैं. उन्होंने लाठियां भी खायी हैं. जेल भी गये हैं. स्वाभाविक था बातचीत में साहित्यकार के दायित्व और समाज के सम्बंधों का ज़िक्र आता. प्रतिबद्धता की बात भी इसी संदर्भ में उठी थी. उन्होंने कहा कि मनुष्य को वे सबसे बड़ा सत्य मानते हैं. अपनी बात को उन्होंने चंडीदास के शब्दों में यूं कहा था–

सुन रे मानुष भाई,
साबार ऊपर मानुष सत्य
ताहार ऊपर किछु नाईं.

‘मैला आंचल’ और ‘परती परिकथा’ का लेखक यदि इस भाषा में बात कर रहा था, तो यह स्वाभाविक ही था. उनके ये दोनों उपन्यास स्वतंत्र भारत के आम आदमी की आशाओं-आकांक्षाओं की कहानी हैं, उनकी निराशा और हताशा की अभिव्यक्ति हैं.

‘लेकिन आम आदमी की बात तो आज के लेखक भी कर रहे हैं. आज तो

आम आदमी की बात करने का आंदोलन-सा चलाया जा रहा है,’ मैंने कहा था.

‘किस आम आदमी की बात? और आम आदमी की बात करने के लिए आंदोलन की क्या ज़रूरत है,’ रेणुजी ने पूछा.

इसी संदर्भ में उन्होंने कहा कि आज आम आदमी की दुहाई देना एक फैशन हो गया है. लेखक आम आदमी को ढूंढ़ रहा है. उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि लेखक आम आदमी को खोजने की कोशिश कर रहे हैं. क्या लेखक स्वयं आम आदमी नहीं है, उन्होंने प्रश्न किया था. और फिर स्वयं ही उन्होंने कहा था, यदि वह आम आदमी है तो स्वयं उसकी बात आम आदमी की बात होनी चाहिए. फिर उन्होंने कहा था, ‘यदि किसी लेखक के लेखन में ऐसा नहीं लगता, तो इसका सीधा-सा अर्थ है, लेखक में ईमानदारी नहीं है, बनावट है.’

श्री रेणु साहित्यिक आंदोलनों को अनावश्यक मानते हैं. उन्हें दिखावा कहते हैं.

स्वयं कथाकार होने के नाते उन्होंने समांतर कहानी की भी चर्चा की. ‘यह समांतर-फमांतर क्या होता है,’ उन्होंने कहा था. उनके अनुसार साहित्य समाज के समांतर या समानांतर नहीं चलता. साहित्यकार किसी स्थिति का दर्शक मात्र नहीं हो सकता. वह स्थितियों को जीता है, उन्हें भोगता है, प्रतिक्रिया करता है.

रेणु ने साहित्यिक आंदोलनों को ‘अस्तित्व की लड़ाई’ की संज्ञा दी. उन्होंने कहा कि लेखक जब अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित हो जाता है, अपने लेखन के प्रति सशंकित हो जाता है तो साहित्यिक आंदोलन की बात सोचने लगता है.

रेणु जी बंबई में एक लेखक सम्मेलन में भाग लेने आये थे. इससे पूर्व कलकत्ता में भी एक लेखक सम्मेलन में भाग ले चुके थे. साहित्यिक आंदोलनों के बारे में उनकी इस बात के संदर्भ में मैं पूछ ही बैठा कि इस तरह के सम्मेलनों में वे क्यों भाग लेते हैं? उन्होंने बड़े हल्के ढंग से कह दिया, ‘अरे भाई, इनकी तो एक ही उपलब्धि होती है, आपस में मुलाकात.’ और यह कह कर वे हंस पड़े थे. फिर उन्होंने जोड़ा था, ‘यहां न आता तो आप से कैसे मिलता?’

‘आप क्यों लिखते हैं?’ मैंने सीधा सवाल किया.

‘मैं अपने आप को खोजता हूं. इसलिए लिखता हूं.’ वे फिर गम्भीर हो गये थे. ‘भोगे हुए साहित्य’ जैसे ‘लिटरेरी जारगन’ में मेरा विश्वास नहीं. पर लिखता मैं भी वही हूं जो देखता हूं, सोचता हूं, अनुभव करता हूं.’

‘यह तो सब लेखक कहते हैं रेणुजी. आप अपने बारे में कुछ खास बात हो तो बताइए.’

'खास बात तो मैं नहीं जानता, पर हां इतना ज़रूर मानता हूं कि जब तक मैं लिखने के लिए मज़बूर नहीं हो जाता, मैं नहीं लिखता—पागल होने के बाद ही लिखता हूं. रही क्यों लिखने की बात, तो अपना दुख-दर्द बंटाने के लिए लिखता हूं.'

> *प्रजातांत्रिक पद्धति से भी उनका विश्वास उठने लगा था. कुछ समय के लिए तो उन्होंने सोचा था कि शायद नक्सलपंथ ही ठीक है. पर यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया.*

'परती परिकथा' लिखने के बाद श्री रेणु का लगभग मौन हो जाना कोई और उपन्यास न लिखना, उनकी इस बात की पुष्टि करता है. उन्होंने बताया भी, 'मैला आंचल में मैंने अपना दुख-दर्द लिखा था, नये स्वतंत्र देश की हालत दिखायी थी. पर तब तक मुझे स्वतंत्र भारत के भविष्य में भरोसा था. मेरा स्वर आशा का स्वर था. पर अपने दूसरे उपन्यास में एक तटस्थ लेखक की हैसियत से मैंने दिखाया कि आदमी का हृदय भी बंजर होता जा रहा है, स्वयं मेरा हृदय भी बंजर हो गया था....'

रेणु को इस बात का दुख है कि इन दो उपन्यासों में कही गयी उनकी बात तीसरे दर्जे के नागरिक की बात समझी गयी. उन्होंने कहा भी, 'लेखक की भूमिका पुरोधा की भूमिका होती है. पर हमारे राजनेता उसे तीसरे दर्जे का नागरिक समझते हैं. जबकि तथ्य यह है कि समाज की सारी विकृतियां स्वयं इन राजनेताओं की देन हैं.'

'तो क्या राजनेताओं की उपेक्षा के कारण लेखक चुप होकर बैठ जाए?'

'नहीं, चुप क्यों बैठे. वह चुप बैठ ही नहीं सकता...'

'तो वर्तमान परिस्थितियों में लेखक को क्या करना चाहिए? क्या कहना चाहिए?'

इस प्रश्न के उत्तर में रेणुजी ने अपना उदाहरण देकर बात समझायी. उन्होंने बताया कि देश की वर्तमान स्थिति ने उनके सपने और विश्वास तोड़ दिये थे. वे निराश हो चुके थे. प्रजातांत्रिक पद्धति से भी उनका विश्वास उठने लगा था. कुछ समय के लिए तो उन्होंने सोचा था कि शायद नक्सलपंथ ही ठीक है. पर यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया. फिर गुजरात में जो कुछ हुआ उससे कुछ आशा बंधी. बिहार ने इस आशा को और मज़बूत किया.

रेणुजी ने स्पष्ट कहा कि आज लेखक को सिर्फ कलम ही नहीं चलाना है बल्कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया में सक्रिय भाग भी लेना है.

उन्होंने कहा, 'मेरा लेखक मर चुका

था. बिहार आंदोलन ने उसे पुन: जीवित कर दिया है. अब मुझे लगने लगा है कि जिस समाज में मैं रह रहा हूं, वह सुधर सकता है.'

मुझे लगा यहां युवा लेखन की बात की जा सकती है. युवा लेखकों के बारे में आपकी क्या राय है, मैंने पूछा था.

'युवा लेखकों पर मुझे भरोसा है,' यह बात मेरा प्रश्न सुनते ही उनके मुंह से निकली थी. उन्होंने कहा, 'नवलेखन में कल्लोल तो है, पर आग भी कम नहीं.' उनका विश्वास था कि इस आग की गर्मी उनको भी लगेगी जो हार थक कर बैठ गये हैं.

लेकिन रेणुजी ने इस बात की ओर संकेत किया कि बंद कमरे में बैठकर लिखने का ज़माना लद चुका है. लेखक को परिवर्तन की प्रक्रिया का गवाह नहीं, भागीदार बनना है. इस संदर्भ में उन्होंने बिहार आंदोलन में जुटे युवा लेखकों का भी ज़िक्र किया. उन्होंने कहा कि ये लेखक अब जो लिखेंगे, उसमें अनुभव की सचाई तो होगी ही, एक नयी दृष्टि भी होगी.

देश के इस वरिष्ठ लेखक की यह मान्यता है कि लेखक का काम सृजन करना है, वक्तव्य देना नहीं. यदि लेखक को वक्तव्य देकर अपने सृजन की आवश्यकता महसूस होती है तो उसे डूब मरना चाहिए.

यहां उन्होंने आलोचकों की भी बात की. उन्होंने बताया कि स्वयं उनका आलोचकों में कोई विश्वास नहीं. क्योंकि अधिकांश आलोचक पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते हैं. इस संदर्भ में उन्होंने एक घटना भी सुनायी थी. उनके एक कथा-संग्रह 'ठुमरी' का विज्ञापन छपा था. विज्ञापन में 'कथा संग्रह' शब्द शायद नहीं था. कथा संग्रह भी अभी प्रकाशित नहीं हुआ था. पर एक 'विद्वान' आलोचक ने समालोचना लिखकर छपवा दी, 'रेणु का यह उपन्यास भी रेणु के पिछले दो उपन्यासों की लीक पर है.' यह घटना सुनाते हुए रेणुजी ने आलोचक के साथ जुड़े विद्वान शब्द पर विशेष ज़ोर दिया था.

'रेणु जी, आपने कहा कि बिहार के आंदोलन ने आपके लेखक को पुन: जीवित कर दिया है. क्या आप कुछ नया लिख रहे हैं.' मेरा अंतिम प्रश्न था.

'हां, उनका उत्तर था. एक उपन्यास लिख रहा हूं. पर उसके बारे में कुछ बताऊंगा नहीं.'

'क्यों?'

'अरे भाई, किसी आलोचक ने पढ़ लिया तो पहले ही समालोचना लिख देगा.'

और रेणुजी यह कह कर हंस दिये थे इस बार की हंसी में हम, वे, सब ने उनका साथ दिया. पर उनकी इस हंसी में भी कहीं न कहीं पीड़ा थी! ❑

शताब्दी-स्मरण

कितनी खरी थी रेणु की दुनिया

• अज्ञेय

‘आब भला पूछिए– ऐसे में कोई अस्पताल की खाट पर पड़ा रह सकता?’ अस्पताल की खाट पर उठकर बैठे हुए रेणु ने एक उत्तेजित मुस्कान के साथ मेरे प्रश्न का उत्तर दिया. उस मुस्कान ने मुझे भी भुलावे में डाल दिया, यद्यपि इतना मैं जानता था कि बात हंसी में टालने की नहीं है– रेणु वैसा मानते भी रहे तो शायद उसमें कोई हर्ज न हो, अगर उसके कारण वह इलाज (यानी ऑपरेशन) के मामले में और लापरवाही न करें– आखिर हंसी भी तो मनोबल को बनाये रखने का एक श्रेष्ठ साधन है और इसलिए रामबाण औषधि से कम नहीं है.

1 मार्च 1677

मैं बड़े तड़के कलकत्ते से पटना पहुंचा था. रेणु से मिलने के सिवा पटना में कोई काम मुझे नहीं था (जयप्रकाश जी तब वहां थे नहीं) और उसका उपाय यहीं निकाल पाया था कि भोर में वहां पहुंच कर तीसरे पहर तक रह लूं– तीसरे पहर की उड़ान से मुझे दिल्ली पहुंचना ही था. अस्पताल का पता ठिकाना कुछ नहीं जानता था. न उतने सबेरे वहां जाता ही, पर अस्पताल के रोगियों से मिलने का नियत समय होते न होते मैंने पता पा लिया था और उनके पास बैठा था. उससे प्राय: महीना

भर पहले वह अस्पताल में भरती हुए थे, पर चुनाव का प्रसंग था इसलिए वहां निश्चल पड़े रहना उनके लिए असम्भव था– डॉक्टर को किसी तरह मना कर वह बाहर निकल आये कि चुनाव की सरगर्मी के बाद फिर भरती हो जायेंगे और ऑपरेशन करा लेंगे. अवश्य ही यह उनका अपने शरीर पर अत्याचार था. शरीर पर अत्याचार वह वर्षों से करते आये थे और जिस उत्तेजित मुस्कान से मुझे भरमाया था उसका प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता था, जिन्हें शायद अधिक कड़ाई बरतनी चाहिए थी क्योंकि अस्पताल में 'पैरोल' पर उनकी रिहाई की अवधि से पहले ही उन्हें भीषण यंत्रणा के कारण फिर लौटना पड़ा– यद्यपि फिर भरती होकर भी उन्होंने ऑपरेशन की तारीख थोड़ी टलवा ही दी कि अब परिणाम भी निकल ही आवे तभी ऑपरेशन होगा.' बल्कि इसी टाल-मटोल की सफाई देते हुए उन्होंने मुझसे वह बात कही थी– 'भला पूछिए, ऐसे में कोई अस्पताल की खाट पर पड़ा रह सकता?'

बात सच थी. मेरे जैसा वृष-स्वभाव का आदमी भी उसी बेचैनी से बेचैन था : बल्कि पटना जाने का रेणू, से मिलने का कारण केवल इतना नहीं था कि उनसे मिलूं, यद्यपि यह चाह जबसे जर्मनी से लौटा था तभी से थी. एक कारण यह भी था कि चुनाव सम्बंधी एक वक्तव्य पर उनके हस्ताक्षर भी लेने थे. मुझे यह विश्वास तो था ही कि वह तुरंत हस्ताक्षर कर देंगे और बात होने पर पहले उन्होंने कहा भी 'जहां आप के हस्ताक्षर हैं वहां तो मैं आंख मूंद कर हस्ताक्षर कर दूंगा', जिसका जवाब मैंने यही दिया कि 'मगर मैं थोड़े ही आंख मूंदकर किये हुए हस्ताक्षर स्वीकार कर लूंगा'.. पर मजमून उन्हें पूरा पढ़ाना या सुनाना तो था ही और डाक के भरोसे रहने का न अवकाश था, न उन दिनों कोई औचित्य.

तब यही सूचना थी कि चुनाव के नतीजे निकल चुकेंगे और मंत्रिमंडल बन जायेगा, उसके बाद ही ऑपरेशन होगा– इसी के अनुसार ही तारीख भी तै हुई थी. मैं लौटा तो सोच रहा था कि उसके फौरन बाद ही फिर पटना जा सकूंगा– पर वह सब होने को नहीं था. एकाएक सूचना मिली कि ऑपरेशन उससे चार दिन पहले ही किया गया और उसके बाद से रेणु बेहोशी की हालत में हैं... दो-तीन दिन बाद फिर फोन पर पता लगा कि कुछ सुधार है, वह होश में हैं, उन्होंने आंखें खोली हैं, यद्यपि बोले नहीं. फिर एक यात्रा से लौट रहा था कि राह में ही समाचार मिला : रेणु नहीं रहे : वह बेहोशी बीच में कुछ नीमहोशी तक ही आयी थी पर टूटी नहीं...

वह उत्तेजित मुस्कान ही फिर याद आयी : रह-रह कर याद आती है. अब भला बताइए. नहीं, वह खाट पर पड़े रहने

का समय नहीं था, पर ऐसे चले जाने का भी तो समय नहीं था वह– लेकिन वह चले गये. दोहराता हूं– रेणु नहीं रहे, तो एकाएक यह वाक्य ही मेरे निकट निरर्थक हो जाता है– यानी मैं स्वयं नहीं समझ पाता कि क्या कह रहा हूं और न रहना क्या होता है. वही मुस्कान फिर सामने आ जाती है. उत्तेजित, आशाभरी, अदम्य उत्साह और आत्मविश्वास (और दबी-सी शरारत) से भरी... मैंने रेणु को अत्यंत उदास भी देखा है, लेकिन कर्म के समय नहीं, मनसा परास्त सा भी देखा है, लेकिन संघर्ष के सामने नहीं और मैं जानता हूं कि अच्छे कर्मठ कर्मी मानों काम की चुनौती के समय ही जागते हैं, अन्य समय वह ढीले-ढीले से, निढाल भी पड़े रह सकते हैं– निरे पिनकची भी जान पड़ सकते हैं. पर काम की चुनौती की ज़रा-सी तपन हवा में आयी नहीं कि वे झपटने को सन्नद्ध बाघ की तरह सध जाते हैं.

सोचते सोचते उनकी पुस्तकों के पन्ने उलटता हूं. मैला आंचल, परती परिकथा– दो उपन्यास जिन्होंने मानों उपन्यास के विकास को एक नयी लीक में डाल दिया, दीर्घतपा. जुलूस, एक और उपन्यास, ठुमरी, आदिम रात्रि की महक, अग्निखोर– कहानी संग्रह जिनके चरित्र मानों एक संसार के द्वार खोल देते हैं जो 'नया' या 'अपरिचित' तो नहीं है, पर जो रेणु द्वारा खोले गये द्वार से आने वाले प्रकाश से ऐसा जगमगा उठता है कि हम अवाक् रह जाते हैं. हम आज उस परिवेश में रहते हैं जिसे 'आम आदमी' को लेकर भड़कायी गयी एक लम्बी धुंधली बहस ने दमघोंटू बना रखा है और जिसमें कभी-कभार उठायी गयी हर आदमी की अद्वितीयता की बात भी रुंध जाती है, पर रेणु की कहानियां मानों सारी बहस और तर्कों के प्रत्युत्तर को अनावश्यक कर देती हैं क्योंकि वे मांगें एक के बाद एक ऐसे चरित्र लगातार सरजती चलती हैं जो 'आम' हैं, 'मामूली' हैं. हमारे आसपास हैं 'समांतर' हैं– और जो अद्वितीय हैं– एकांत अद्वितीय. रेणु मुझे बड़े भाई-सा मानते थे और मैं उन्हें अनुज-सा, पता नहीं भाई भाई के बीच की सहज प्रतिस्पर्धा का अनुभव उन्हें कभी हुआ या नहीं, पर मुझे तो कभी-कभी अवश्य ईर्ष्या होती थी उनके इन चरित्रों को अपने सामने पाकर– कितनी वैविध्य भरी, कितनी समृद्ध और कितनी खरी थी रेणु की यह दुनिया– जिसे वह कितने निरायास ढंग से सामने मूर्त्त कर देते थे– कैसी निरायास लेकिन कितनी अचूक और दृढ़ थी उनकी पकड़. साई बाबा लोग, सुना है, हवा में से चुटकी-भर भभूत ले आते हैं, पर हर बार वही भभूत तो आती है. और रेणु थे कि हर बार हवा में हाथ बढ़ाते थे और पकड़ लाते थे एक नया और अभूतपूर्व पंछी... और ऐसा पंछी जिसे देखकर हम कहें कि 'इसे हमने

पहले कभी नहीं देखा,' लेकिन पहचाने कि 'अरे, इसे तो हम रोज देखते हैं.' यही तो होती है कारयित्री, भावयित्री, रूपयित्रि प्रतिभा : जो पहचाने को नया और अजनबी को पहचान कराती हुई सामने ला खड़ा करती है...

पर मैं अभी प्रशंसा की या ईर्ष्या की बात कहने के लिए कहानियों की बात नहीं उठा रहा था. पढ़ी हुई कहानियों के पृष्ठ उलटते उलटते एक कहानी पर चौंक कर रुक गया : मन में प्रश्न कौंध गया कि भावन और रूपन के आगे इस मायावी लेखक में क्या अनागत-दर्शन की दैवी प्रतिभा भी थी? 'भवितव्य' ठीक ज्यों का त्यों दीखता है कि नहीं, इस बहस में नहीं पड़ूंगा, पर हमारी चेतना काल के आयाम में आगे और पीछे, दोनों ओर की यात्रा कर सकती है, ऐसा मान लूंगा, इसीलिए पूछता हूं : क्या 'रेखाएं : वृत्तचक्र' नाम की कहानी में अनागत दर्शिता का यह गुण नहीं झलकता? अवश्य ही उसमें अनुभूत अतीत का भी काफी पुट है– मैंने कहा न कि चित् काल के आयाम में आगे और पीछे दोनों दिशाओं में यात्रा कर सकता है? –पर अतीत का सही चित्र तो कोई अचरज की बात नहीं है. हमें चौंका कर छोड़ जाता है आगमिष्यत् का वैसा चित्र जैसा 'वृत्तचक्र' के शय्याग्रस्त रोगी के नशे के स्वप्नों में प्रस्तुत किया गया है. रेणु पहले भी अस्पताल में रहे, नशा, मूर्छा, औषधि-जन्य स्वप्न, मितली, श्वासनली में यंत्र नली अथवा धमनियों में पराया रक्त चढ़ाये जाने की प्रक्रियाओं से वह भलीभांति परिचित थे. पर 'रेखाएं : 'वृत्तचक्र' के अंश निकाल कर हम अखबारी रिपोर्ट के रूप में प्रस्तुत कर दें तो लगेगा यह तो इसी पिछले ऑपरेशन के बाद की अंतिम कष्ट भरी घड़ियों का ब्योरा है... इसे क्या 'रेणु' ने पहले देख लिया था? टालमटोल का एक कारण यह भी तो नहीं रहा?'

प्राणरहित शरीर केवल शव है– 'मिट्टी' जिसे 'उठा देना' ही ठीक है. शव को लेकर पश्चिम से आयातित भावुकता मुझे अच्छी नहीं लगती और उसे भरसक प्रश्रय नहीं देता. पर उस संदर्भ में 'रेणु' नहीं रहे कहते कहते जानता हूं कि यशः शरीर और तेजः शरीर रेणु के हमारे बीच और गहरे व्याप रहे हैं, नित्य हैं. प्रेमचंद की परम्परा को रेणु ने आगे बढ़ाया या नहीं बढ़ाया, इसे लेकर बहस होती है, रेणु के बाद और भी नाम शृंखला में जोड़े जाते हैं और उसके पक्ष-विपक्ष में तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं. पर मुझे रेणु की एक विशिष्टता दीखती है जिसके कारण मैं उन्हें सब से अलग मानता रहा हूं और मानता हूं. 'प्रेमचंद' से भी वह अलग थे और परवर्ती उपन्यासों को पढ़-पढ़ कर रेणु की विशिष्टता से और प्रभावित होता जाता हूं. माना जाता है कि प्रेमचंद ने गांवों के

यथार्थ चित्र अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किये. पर प्रेमचंद का गांव चित्र कभी आदर्शवाद की छाप से मुक्त नहीं हुआ. वह मानों निहित भाव से यही दर्शाते हैं कि गांवों में असंख्य बुराइयां हैं, पर असल में वे सब आरोपित हैं– कि ज़मींदार–साहूकार, पुलिस आदि के अत्याचार से अलग हो तो गांव का जीवन आदर्श जीवन है. गांव के आदमी का चरित्र आदर्श चरित्र. लगभग 'अहा ग्राम जीवन भी क्या है' वाला मनोभाव, लेकिन एक 'बशर्ते कि' के साथ. परवर्ती उपन्यासकार इस आदर्शवादी 'मोह' से सर्वथा मुक्त हैं. ग्राम यथार्थ को वे निर्मम बेलौस भाव से प्रस्तुत करते हैं– और इस यथार्थ में न केवल वे सभी बुराइयां और कमीनगियां हैं जो दूसरे मानव समाजों में हैं, बल्कि इसके साथ आशा की एकांत अनुपस्थिति भी है. प्रेमचंद का गांव एक प्रच्छन्न आदर्श लिये है तो नये यथार्थवादियों के उपन्यास एक स्पष्ट और सम्पूर्ण निराशा लिये हुए– अरे, 'ग्रामसमाज' भी वैसा ही सड़ा हुआ है जैसे अन्य समाज और इसमें आशा के लिए कभी कोई गुंजाइश नहीं है. श्रीलाल शुक्ल, शिवप्रसाद सिंह और अब गोविंद मिश्र तक के उपन्यास इसी हताशा और पराजय भाव की गहरी छाप छोड़ जाते हैं. (नागार्जुन का मैंने नाम नहीं लिया : जहां 'यथार्थ' मतवाद-वेष्टित होता है, वहां आशा भी मोह-वेष्टित होती है. एक 'बशर्ते कि' का स्थान एक दूसरा 'बशर्ते कि' ले लेता है : जब 'यथार्थ' ही प्रतिज्ञाधीन होता है तो और सब कुछ भी वैसा हो जाता है.) तो एक अकेले रेणु के उपन्यासों में गांवों की समस्त बुराई, कमीनगी और गलाजत के बीच एक अखंड मानवी विश्वास की चिनगारी सुलगती दीखती है. इस संदर्भ में शायद प्रेमचंद की अपेक्षा शरतचंद्र का नाम लेना अधिक युक्तियुक्त होगा. शरत के पल्ली समाज में भी गांव के मटैले यथार्थ के बीच मानवीय करुणा की धारा बहती दीखती है, (और हां, रेणु में कई जगह उस भावुकता का भी संस्पर्श मिलेगा जो शरत में था और प्राय: बांग्ला उपन्यासों में रहता रहा है, यद्यपि उत्तरकालीन कहानियों में रेणु उससे मुक्त हो चुके थे.)

मैंने पहले कहा था कि श्रेष्ठ साहित्य परिचित को नया और पहचाने को अजनबी कर देता है. श्रेष्ठ साहित्य का एक लक्षण यह भी है कि वह वस्तु को निर्मम आंखों से देखता हुआ एक निर्मल कारुण्य के रस से अभिषिक्त भी करता चलता है : वास्तव कितना भी कठोर हो, सूखा नहीं होने पाता. वह बेपनाह कारुण्य हमें रेणु की कथा सृष्टियों में मिलता है, यह उनका सबसे बड़ा गुण है और इसी के कारण वह समाज के हर वर्ग के 'अपने' लेखक हैं : उनके भी, जो रेणु की भाषा की निरंकुश रंगीनी और अनगढ़पन पर खीझते हैं, झल्ला

उठते हैं और इस गुण को और भी गुणवत्ता दे देता है उस कारुण्य में विनोद का पुट : यह उस करुणा को भावुकता से भी बचा लेता है और बोझीली दया से भी (– 'भगवान, हमें दया से बचा') रेणु की कृतियों का प्रिय क्षेत्र कोसी नदी का क्षेत्र है. उस नदी को रूपक का आधार बनाकर कहें कि कोशी की बाढ़ की तरह रेणु की करुणा उमड़ती है और बाढ़ उतरने पर छोड़ दिये गये असंख्य जल कोशों की भांति ही वह करुणा सलिलविनोद के सरोवरों में निथुरता बनी रहती है. बाढ़ का पानी तो पानी है, यह निथुरा जल 'सलिल' है, 'जीवन' है.

ऐसे अवसर पर परिवार-परिजनों के साथ समवेदना और दिवंगत के लिए शांति की कामना की जाती है, रेणु ने स्वयं ही हम सबको जिस व्यापक समवेदना के घेरे में बांधा, उसे ध्यान में रखते हुए हम क्या कहें? वह पारमिता करुणा ही हम सब को एक किये रहे, सबको सबका साझीदार बनाये रहे.

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च, 1921 को पूर्णिया जिले के एक गांव में हुआ था. निजी जीवन का क्षेत्र भी मुख्यतया उत्तर बिहार का प्रदेश ही रहा, जिसे उन्होंने अपनी रचनाओं में विलक्षण संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत भी किया है. पर उनके राजनैतिक विचार और उनकी प्रकृत गत्वरता उन्हें आसपास के प्रदेशों में भी घुमाती रही. नेपाल में वह श्री बी.पी. कोइराला के सहयोगी रहे और वहां के सामंती राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति आंदोलन में उन्होंने सक्रिय और जोखिम भरा भाग लिया. श्री जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन में भी वह सहयोगी रहे, आपातकाल में उन्होंने जेल भी काटी. भारत सरकार से उन्हें 'पद्मश्री' की उपाधि भी मिली, जो उन्होंने अनंतर उसके अत्याचारों के विरोध में लौटा दी (बिहार शासन से मिलने वाली एक वृत्ति भी उन्होंने छोड़ दी.) ❑

शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य

पृथ्वी पर जहां तक हमारी आंखें जाती हैं– अर्थात जो कुछ दृष्टि पथ में है, जो कुछ उपस्थित है, वह सब लोक में है. तब क्या केवल गांव में रहने वाले लोगों को लोक कहेंगे? या गांव के लोग जो कहते-सुनते-गाते हैं, उसे लोक साहित्य कहेंगे? कहते हैं– एक शिष्ट साहित्य है, एक लोक साहित्य है. नया-पुराना, कितना संकुचित हमारे साहित्य को खंड-खंड में बांट देने वाला यह बंटवारा है. **– श्रीराम परिहार**

जलवा

● फणीश्वरनाथ ‘रेणु’

फातिमादि को कभी देखूंगा और इस तरह देखूंगा, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी. इसलिए, कुछ देर तक ‘पटना-मार्केट’ को स्वप्नलोक समझकर खोया-खोया-सा खड़ा रहा–जूते की दूकान पर. ...बुरके में सिर से पैर तक ढंकी दो महिलाएं और साथ में नौ-दस साल की गुड़िया-जैसी खूबसूरत लड़की. लड़की ने दुबारा पूछा– ‘मौसी पूछ रही हैं कि पटना कब आये आप?’

दुकानदार ने रेजगारी गिनते हुए कहा, ‘वह आप ही से पूछ रही है.’

लड़की हंस पड़ी. बुरके के अंदर भी हंसी खनकी. ...परिचित हंसी! लड़की हंसी अपनी मौसी की किसी बात पर. बोली, ‘मेरी मौसी आपकी फातिमादि हैं.’

अब कत्थई रंग के बुरके के अंदर से फातिमादि की चिर-परिचित बोली स्पष्ट सुनाई पड़ी– ‘सुना, दिल्ली या बम्बई में रहते हो?’

‘मैं पिछले दस साल से पटना में हूं.’

‘अजब बात! पटना में हो और कभी देखा नहीं?’

‘और आप...?’ इतनी देर के बाद मेरा होश लौटा, मानो.

मेरी बात को बीच में ही काटकर बुरका-पोश फातिमादि बोलीं, ‘मेरी छोड़ो. अपनी बताओ. शादी-वादी की?’

मुझे सकपकाया देखकर वह बोलीं, ‘बाकरगंज-गली में ‘दानिशमंजिल’ देखा है न? वहीं रहती हूं. बहू को लेकर किसी दिन आओगे? कल ही आओ न, सुबह आठ बजे.’

लड़की बोली, ‘कल सुबह आठ बजे तो हमीदा खाला के घर जाना है.’

‘ओ-ओ! ...परसों आओ!’

मेरे मुंह से अनायास ही निकल पड़ा– ‘प्रणाम!’

‘खुश रहो.’

फातिमादि को कभी ‘आदाब अर्ज’ नहीं कहा हमने. वह हमारे ‘प्रणाम’ को कबूल कर हमेशा ‘खुश रहो’ कहकर आशीर्वाद देतीं. किंतु फातिमादि को इस तरह सिर से पैर तक ढंका हुआ कभी नहीं देखा. उन दिनों भी नहीं, जब वह परिचितों की निगाहों से बचकर रहती थीं.

रात-भर नींद नहीं आयी. आंखें मूंदते

ही कत्थई रंग के बुरके में ढंकी हुई छाया आकर खड़ी हो जाती. ...एक जोड़ी जालीदार आंखें! लाख कोशिश करके भी बुरके को हटाकर फातिमादि का चेहरा नहीं देख सकता. और झुंझलाकर आंखें खोल लेता.

अपने घरवाले की लम्बी सांसों और छटपटाहटों को देख-सुनकर कोई भी गृहिणी सशंक हो सकती है. मगर कथाकार की पत्नी जानती है कि कहानी गढ़ते समय उसका घरवाला इसी तरह बेवजह, बेकार, बेकरार होकर लम्बी सांसें लेता करवटें बदलता है. अतः वह सुख से सोई रहती है.

उस रात जगी हुई थी. पूछा, 'तुमसे कभी फातिमादि के बारे में कहा है मैंने?'

'नहीं तो! कौन फातिमादि?'

'एक कहानी की फातिमादि.' बात को टालकर मैंने करवट ली.

कहानी की फातिमादी! अचरज हुआ कि फातिमादि के बारे में अब तक अपनी पत्नी को कुछ क्यों नहीं सुनाया! ...नहीं, अचरज की कोई बात नहीं. कट्टर सनातनी की बेटी और हिंदू-सभाइस्ट भाई की बहन को जान-बूझकर ही मैंने कभी फातिमादि की कोई बात नहीं बतायी. डर था कि सुनकर मुंह बिदकाकर कुछ कह देगी. कहेगी– ऐब्सर्ड!

ऐब्सर्ड नहीं! असाधारण!

आज से छत्तीस साल पहले भी लोगों ने कहा था– एबनॉर्मल. ...अधपगली!

मेरा सौभाग्य कि मैंने इस असाधारण महिला को बहुत करीब से देखा है.

...याद आती है 1930 की उस सभा की. स्कूल के पिछवाड़े में भारी भीड़. ठाकुरबाड़ी के चबूतरे पर गांधी-टोपी पहने कई लोग बैठे थे. एक दस-ग्यारह साल की लड़की 'लेक्चर' दे रही थी. लड़की को पाजामा और कुरता पहने देखकर बहुत अचरज हुआ था. सुना, सोनपुर के मौलवी साहब की बेटी है. मौलवी साहब 'खिलाफत' के समय से ही 'मोटिया' पहनते हैं, चर्खा कातते हैं. सफेद पाजामा-कुरता पहने, कंधे पर तिरंगा झंडा लेकर खड़ी लड़की!

...1934 के प्रलयंकारी भूकम्प के बाद, दूसरी बार देखा था. चार साल में ही काफी बड़ी दीख रही थी. महात्मा गांधी भूकम्प-पीड़ित क्षेत्र के दौरे पर आये थे. मंच पर गांधीजी के पास खड़ी लड़की को पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई थी. ...प्रार्थना-सभा में कुरानशरीफ की आयतों का सस्वर-पाठ करती हुई मौलवी साहब की बेटी! हाल ही दो साल की सज़ा काटकर जेल से निकली है. कहते हैं, गिरफ़्तारी के समय पुलिस के डंडे से बुरी तरह घायल हो गयी थी.

...1937 में तीसरी बार. निकट से देखने का पहला अवसर मिला. स्कूल के मैदान में जिला राजनैतिक-सम्मेलन का

आयोजन किया गया था. कांग्रेसी-मिनिस्टरी के दिन थे. इसलिए स्कूल में ही प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी और स्कूल के बालचर कांग्रेस-सेवादल के स्वयंसेवकों के साथ मिलकर काम कर रहे थे. सेवादल की जी.ओ.सी. मौलवी साहब की बेटी को पहली बार 'फातिमादि' कहकर पुकारा था. उस सभा में प्रोफेसर अजीमाबादी की तकरीर के समय, मुस्लिमलीगियों ने गड़बड़ी मचाने की कोशिश की. फातिमादि लपककर मंच पर गयी थीं और उनकी तेज़ आवाज़ पंडाल में गूंज उठी थी– 'गद्दारो! शरम करो.'

...और, 1943 में पांच महीने तक दिन-रात उनके साथ रहना पड़ा. बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद और गोरखपुर की गलियों में, 'आज़ाद दस्ता' के क्रांतिकारी कार्यक्रमों को लेकर अलख जगानेवाली फातिमादि की तसवीरें आंखों के आगे आती हैं, एक-एक कर. ...गिरफ्तारी के समय पुलिस-सार्जेंट की भद्दी गालियों के जवाब देते समय उनके चेहरे पर जो बिजली कौंधी थी; 1947 में हिंदू-मुस्लिम दंगे के समय उपद्रवियों से जूझते समय उनके मुखमंडल पर जो आभा छायी रहती थी, सबको इस कत्थई रंग के बुरके ने कैसे ढंक दिया? यह कैसे हुआ?

...मैं उनके चेहरे पर पड़े परदे की चित्थी-चित्थी उड़ा देना चाहता हूं. मैं फातिमादि की सूरत देखना चाहता हूं और वह चीखकर अपनी दोनों हथेलियों से अपना मुंह ढंक लेती हैं– 'नहीं-नहीं. ओजू! ...अजीत... मेरा चेहरा मत देखो...'

सपना टूटने के बाद बहुत देर तक मैं चुपचाप पड़ा रहा. ऑल इंडिया रेडियो का 'सिगनेचर-ट्यून' शुरू हुआ. हठात्, मन में एक खयाल आया– आकाशवाणी के 'सिगनेचर-ट्यून' को बदलने के लिए अब तक कोई 'हंगामा' क्यों नहीं हुआ? यह तो शुद्ध 'अजान' का सुर है. ...वायलिन पर चढ़ती-उतरती नमाज़ की पुकार.

●●●

'दानिश-मंजिल' की सीढ़ियों पर चढ़ते समय मुझे लगा, इस पुरानी इमारत की हर ईंट मुझे ताज्जुब-भरी निगाहों से देख रही है.

'किससे मिलना है?'

'फातिमादि से.'

'किससे?'

'फातिमादि से.'

सवाल पूछनेवाला अचरज से बुत बना खड़ा रहता है. फिर बुदबुदाता है– 'फातिमादि?'

गुड़िया-जैसी खूबसूरत लड़की हंसती हुई आती है, सलाम करती है और कहती है, 'मौसी पूछती हैं कि बहू को क्यों नहीं ले आये?'

मैं समझ गया, फातिमादि आज भी मेरे सामने नहीं आयेंगी. आज भी इसी लड़की को बीच में रखकर बातें चलायेंगी.

उधर कई कमरों के दरवाज़े ज़ोर से बंद हुए. मद्धिम आवाज़ में बजते हुए रेडियो अचानक चुप हो गये. हवा में फिसफिसाहट और सरगोशियां.

'सुना है, अफसाने लिखते हो?' चिक की आड़ से सवाल पूछा गया.

फर्श पर बिछी फटी दरी की ओर देखते हुए मैंने जवाब दिया– 'जी हां, झूठ बोलने की आदत को अब पेशा...'

खिलखिलाहट सुनकर 'दानिश-मंजिल' की कई खिड़कियां चरमराकर खुलीं. भुने हुए प्याज की गंध से कमरा भारी हो गया. और इसी गंध ने मेरे दिमाग में हाल की एक घटना की याद जगा दी. ...एन.सी.सी. के कैम्प के बावर्चीखाने में 'जहर-कातिल' की शीशी के साथ पकड़े गये उस मुसलमान नौजवान का नाम क्या था?

गुड़िया-जैसी लड़की का नाम नगमा है. वह एक प्याली चाय ले आयी. मैं झूठ बोलना चाहता था, मगर बोल नहीं सका. चाय की प्याली हाथ में लेकर मैंने पूछा– 'तो फातिमादि...आप इतने दिन से...मेरा मतलब...आप न जाने कहां खो गयीं?'

जवाब मिला, 'बहू को लेकर कब आ रहे हो?'

अपने उन नवाबजादों से कभी क्यों नहीं पूछा, जो रातोंरात 'देश-भगत' बनकर कांग्रेस के खेमे में दाखिल हो गये–बगल में छुरी दबाकर. अपने नेताओं से क्यों नहीं जवाब तलब करते?

मैं आंखें मूंदकर चाय पी गया. मैं समझ गया, फातिमादि मेरे सवाल का जवाब नहीं देना चाहतीं. मुझे अब थोड़ा संदेह भी होने लगा, यह खातून हमारी फातिमादि नहीं, कोई और हैं.

मैं कुरसी छोड़कर उठा. नगमा तश्तरी में पान ले आयी. इस बार साफ-साफ झूठ बोल गया, 'मैं पान नहीं खाता.'

चलते समय मैंने हिम्मत बांधकर कह दिया, 'माफ करें. मुझे लगता है, आप हमारी वह फातिमादि नहीं...'

'तुमने ठीक समझा है, अजीज.'

अजीज? मैं फिर चौंका. याद आयी, फातिमादि मुझे अजीत नहीं, अजीज कहा करती थीं. मैं खामोश खड़ा रहा और चिलमन के उस पार फिर एक खुली खिलखिलाहट खनक उठी.

'दानिश-मंजिल' की सीढ़ियों से उतरते समय मुझे लगा, इस पुरानी इमारत की हर ईंट मुझे नफरत-भरी निगाह से देख रही है. ...मैं उस नौजवान का नाम याद करने की कोशिश करने लगा, जिसने एक हज़ार 'कैडेट' के भोजन में जहर मिला दिया था.

'अमजदिया-होटल' के सामने दीवार पर एक उर्दू 'पोस्टर' चिपकाया जा रहा है. मोटे हरूफों में लिखा हुआ है–

'नेशनलिस्ट-मुस्लिम कनवेन्शन मुर्दाबाद!... गद्दारों से होशियार!'

उस नफ़रत-आमेज पोस्टर को पढ़कर एक मौलाना तैश में बड़बड़ाने लगा– 'इन नद्दाफ़ के बच्चों ने रुई धुनना छोड़कर अब कौम को धुनना शुरू किया है. इन्हें सबक सिखाना होगा. नेशनलिस्ट के बच्चे...!'

मुझे मितली आने लगी. रिक्शा पर बैठकर मैंने अपनी नाड़ी पर उंगली रखी. दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा. पसीने से देह तर-ब-तर हो गयी. ...चाय के स्वाद में थोड़ी तुर्शी थी न? ...दाहिनी ओर जनरल हॉस्पिटल है और बाईं ओर पुलिस चौकी. सोचने लगा, पहले किधर जाना ठीक होगा?

किंतु रिक्शावाले ने पूछा तो जवाब दिया, 'राजेंद्रनगर ले चलो.'

● ● ●

एक कहानी-गोष्ठी में 'नयी कहानी', 'अ-कहानी', 'आज की कहानी', 'आनेवाले कल की कहानी' पर लगातार चार घंटों तक चुपचाप वाद-विवाद सुनने के बाद सीधे घर लौटने की हिम्मत नहीं हुई. ऐसी हालत में गंगा के किनारे अथवा किसी 'बार' में बैठकर ही अपने को ढूंढ़ना पड़ता है. लेकिन रिक्शावाले ने पूछा तो जवाब दिया, 'राजेंद्रनगर चलो.'

'गोलमार्केट' के पास पहुंचकर हमेशा की तरह अपने फ्लैट और कमरे को दूर से ही देखा. अपने कमरे में रोशनी देखकर माथा ठनका–अब कहां जाएंगे?

दिल को कड़ा किया– कोई भी हो, माफी मांग लूंगा. कोई बहाना बनाकर विदा कर दूंगा.

सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते मैंने सारी दुनिया की परेशानी ओढ़ ली. दुनिया से बेजार एक आदमी का मुखौटा चेहरे पर लगाकर दरवाज़ा खटखटाया. किंतु दरवाज़ा खुला तो देखा पत्नी के मुख-मंडल पर खुशी की लाली बिखरी हुई है. मेरी लटकी हुई सूरत पर उसकी नजर ही नहीं पड़ी. हुलसती हुई बोली, 'कहो तो कौन आये हैं?'

मुझे अवाक् होने का मौका ही नहीं मिला. हंसती-मुसकाती नगमा ने आकर सलाम किया. पत्नी बोली, 'ओहो! तीन घंटे से हम हंस रहे हैं. ...तुम कहां थे? ...और, तुम भी खूब हो! कभी बताया नहीं.'

'क्या नहीं बतलाया?' मैंने पूछा.

'यही कि तुम हिंदू नहीं, मुसलमान हो!' मेरे कमरे से आवाज़ आयी.

देखा, फातिमादि सारे फ्लैट को रौशन करके बैठी हैं. बुरका फर्श पर पड़ा हुआ है. बुरका नहीं, चित्थी और चीथड़े!

'यह कैसे हुआ? किसने...?'

पत्नी बोली, 'और कौन! तुम्हारी दुलारी बेटी नौमी...जब तक बुरका नहीं उतारा, भौंकती रही. और जब बुरका

उतारकर रखा तो दांत से नोंच-नोंचकर छुट्टी कर दिया.'

'वह है कहां?'

देखा, फातिमादि की गोदी में आंचल के नीचे दुबककर बैठी है, शैतान. कोई अपराध करने के बाद वह इसी तरह मुंह बनाकर बैठती है.

'गोदी से उतरती ही नहीं. गुर्राती है.' नगमा बोली.

उन्नीस-बीस साल के बाद देखा, फातिमादि जैसी की तैसी हैं. सिर्फ, आंखों के पास कई नयी रेखाएं उभर आयी हैं.

पत्नी की हंसी छलक रही थी रह-रहकर. किस्सा सुनाने लगी– 'नौमी को बांधकर मैंने दरवाज़ा खोला. इन्होंने पूछा, 'अजीज हैं घर में?' मैं बोली, कौन अजीज? ...अजीज नहीं, अजीत. तो बोलीं– 'अरे हां-हां, सुना है उसने अपने नाम का एक हरूफ बदलकर अपने को हिंदू बना लिया है और एक बेचारी हिंदू लड़की से शादी कर ली है.' मैं तो अवाक्...!'

'अच्छा! तो भाभीजान अब तक मुगालते में हैं. क्यों अजीज? इस तरह किसी का धरम बिगाड़ना कुफ्र नहीं तो और क्या है? लेकिन मान गयी तुमको. हो उस्ताद! बुतपरस्त बनने के बाद अपना देवता भी चुना तो एक ऐसे दाढ़ीवाले को जिसने कलमा पढ़कर...'

उन्हें श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की मूर्ति की ओर इस तरह इशारा करते देखकर हम सभी ठठाकर हंस पड़े.

हंसी की हिलोरें थमीं तो मैंने पूछ लिया, 'अच्छा, तब बताइए. आप कहां थीं? कहां हैं?'

'कब्र में थी, कब्र में हूं.'

पत्नी रसोईघर में चली गयी. मुझे लगा, अभी यह सवाल पूछना उचित नहीं हुआ.

फातिमादि ने पूछा, 'तुमने क्या सोचा था? ...पाकिस्तान चली गयी है. है न?'

'आपने पॉलिटिक्स क्यों छोड़...?'

'यह मुझसे क्यों पूछते हो? अपने उन नवाबजादों से कभी क्यों नहीं पूछा, जो रातोंरात 'देश-भगत' बनकर कांग्रेस के खेमे में दाखिल हो गये–बगल में छुरी दबाकर. अपने नेताओं से क्यों नहीं जवाब तलब करते? कल तक गांधी-जवाहर-पटेल को सरेआम गालियां देनेवाले, कौमी झंडे को जलानेवाले फिरकापरस्त लीगियों की इज़्ज़त अफजाई की गयी और मुल्क के लिए मरने-मिटनेवालों को दूध की मक्खियों की तरह निकाल फेंका. ...तुम खुद अपने से यह सवाल क्यों नहीं पूछते?' फातिमादि का चेहरा लाल हो गया. मुझे खुशी हुई.

मैंने टोका– 'लेकिन, आपका इस तरह खामोश हो जाना...'

'खामोश?' लगा, सिंहनी तड़प उठी– 'इन जालिमों ने मुझ पर क्या-क्या कहर

ढाये, यह तुम्हें क्या मालूम? ...और, हमने किस दरवाज़े की कुंडी नहीं खटखटाई! मगर, दिल्ली से पटना तक के खुदाबंदों ने मुझे अकल की दवा करने की सलाह दी. शादी करके बच्चे पैदा करने की नसीहत दी. और आखिर में धमकियां... ओह... अजीज...!'

फातिमादि का गला भर आया. पत्नी न जाने कब आकर खड़ी हो गयी थी. बोली, 'तुम भी अजब आदमी हो...'

नौमी, जो अब तक दुबककर बैठी थी, फातिमादि के चेहरे को सूंघकर 'कुंई-कुंई' करने लगी.

'अब भी लोगों को होश नहीं हुआ है. इन्हें, सिर्फ अपनी गद्दी की फिक्र है. देश जहन्नुम में जाए. इन्हें क्या?' फातिमादि की बोली में गहरी पीड़ा उतर आयी थी– 'तुम...तुम... अफसाने लिखते हो न? ...याद है, आज़ादी के पहले जिन तरक्की-पसंद अदीबों की नज़्मों और अफसानों में हिंदू-मुस्लिम इत्तहाद की बातें, 'मानवता' की दुहाई और न जाने क्या-क्या ठुंसी रहती थीं, आज़ादी के बाद अचानक उनकी बोलियां बंद ही नहीं हुईं, बदल गयीं... अव्वाम की कसमें खानेवाले टुकुर-टुकुर देखते रहे और फिरकापरस्त अजदहों ने पूरी कौम को लील लिया.'

पत्नी ने टोका– 'फातिमादि, खाना ठंडा हो जाएगा.'

• • •

टाउन-हाल में 'नेशनलिस्ट-मुस्लिम-कान्फ्रेन्स' की तैयारी धूमधाम से हो रही है. देश के कोने-कोने से प्रतिनिधियों के आने की खबरें छप रही हैं. और इन्हीं खबरों के साथ मोटी सुर्खियों में इस कान्फ्रेन्स की मुखालिफत के समाचार भी छपते हैं. रोज दोनों ओर से, सैकड़ों नामों के साथ बयान शाया होते हैं. विरोधियों का कहना है कि कोई 'गैर-नेशनलिस्ट' नहीं, सभी मुसलमान नेशनलिस्ट हैं. और अपने को नेशनलिस्ट कहनेवाले खुलेआम कहते हैं कि पुराने 'मुस्लिम-लीगियों' के दिल-दिमाग में फिरकापरस्ती का जहर है. उन पर यकीन नहीं किया जा सकता. ...बहुत दिन से किसी राजनैतिक जलसे में शरीक नहीं हुआ था. किंतु इस बार अपना 'कर्तव्य' समझकर इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए पहुंचा. किंतु, वहां का दृश्य देखकर फुटपाथ पर ही ठिठककर खड़ा रहा.

टाउन-हाल के सामने सड़क के दोनों ओर हज़ारों लोग खड़े नारे लगा रहे थे. गालियां, नारे और रह-रहकर रोड़े और पत्थरों की बौछार!

पुलिस के सिपाही चुपचाप कतार बांधकर खड़े थे, क्योंकि प्रदर्शनकारियों की रहनुमाई 'कुलीन मुस्लिम' नेताओं के साहबजादे और बड़े अफसरों के लड़के कर रहे थे. मुझे लगा, हम फिर सन् 1947 साल में लौट गये हैं. हवा में

फिर वही जुनून, वही नारे, वही नज्जारे, वही चेहरे!!

'लेना. लेना. जा रहा है काफिर का बच्चा!'

'तड़तड़ाक्! तड़तड़ाक्!'

'यह रहा हरामखोर! मारो साले को!'

'सुअर की औलाद!'

'तड़तड़ाक्!'

अब वे हर डेलीगेट को पकड़कर पीटने लगे. उत्तेजना की लहरें तेज़ होती गयीं. नारे, गालियों और रोड़ों की वर्षा जोर-शोर से होने लगी.

'महात्मा गांधी की जय!'

एक महीन किंतु तेज़ आवाज़! हठात सबकुछ रुक गया. लोगों ने देखा, अंजुमन इस्लामिया हॉल के प्रवेशद्वार 'अब्दुल बारी-दरवाजा' के सामने एक औरत खड़ी नारे लगा रही है.

फातिमादि? मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ. देखा, फातिमादि ही हैं.

'कौन है यह औरत?'

'कोई हिंदू...?'

'अरे नहीं. पहचानते नहीं. यह वही कुतिया है...'

'फातिमा?... साली फिर कहां से आ गयी?'

'कुत्ती!'

पागलों का एक जत्था नाचता, अश्लील गालियां देता हुआ फातिमादि की ओर झपटा. फातिमादि मुस्कुराती खड़ी रहीं. देखते-ही-देखते दरिंदों ने उनको ज़मीन पर पटक दिया और बाल पकड़कर घसीटना शुरू किया. दोनों ओर खड़ी भीड़ ने तालियां बजायी– 'शाबाश! जब तक पुलिस के सिपाहियों की टुकड़ी पहुंचे, उन्होंने फातिमादि के सभी कपड़े उतार लिये थे. ...मैं इससे आगे और कुछ नहीं देख सका.'

* * *

कई दिन के बाद बहुत हिम्मत बांधकर हम दोनों अस्पताल में फातिमादि को देखने पहुंचे.

केबिन के दरवाज़े के पास ही नगमा खड़ी मिली. हमें देखते ही बिलख-बिलखकर रोने लगी.

'जानवरों ने फातिमादि के चेहरे पर एसिड की शीशी उड़ेल दी थी. चेहरा झुलसकर काला हो गया है. एक आंख खराब हो गयी है. ...हाथ की हड्डी टूट गयी है.'

आहट पाकर उनके ओंठ थरथराए. शायद मुस्कुराने की कोशिश कर रही हैं. फिर धीमे स्वर में बोलीं– 'दुर पगला! यहां रोने आया है? जलवा देख. ...भाभी! कल सूजी का 'पायस' ...क्या कहते हैं उसको... 'परमान्न'... बनाकर ले आना. नौमी को भी साथ लाना.'

फातिमादि को कभी इस तरह देखूंगा, इसकी कल्पना भी नहीं की थी हमने. ❑

रिपोर्ताज

जै गंगा!

● फणीश्वरनाथ 'रेणु'

जै गंगा...

इस दिन आधी रात को 'मनहरना' दियारा के बिखरे गांवों और दूर दूर के टोलों में अचानक एक सम्मिलित करुण पुकार मची, नींद में माती हुई हवा कांप उठी– 'जै गंगा मैया की जै...'!!

अंधेरी रात में गंगा मैया की क्रुद्ध लहरें हहराती, घहराती पछाड़ खाती और फुफकारती हुई तेज़ी से बढ़ रही थीं.

लहरें उग्र होती गयीं, कोलाहल बढ़ता गया– जै गंगा मैया... मैया रे... दुहाई गंगा मैया... भगवान....'

...गाय बैलों का बंधन काटा... औरतों को चुप करो भाई, कुछ सुनने भी नहीं देती है, बच्चों को देखो, ऊचला बांध पर औरतों को भेजो, अरे बाप रे, पानी बढ़ रहा है, रे बाप!...! ...दुहाई...पानी ऊपर की ओर बढ़ रहा था, मानो ऊपर की ओर उठती हुई क्रंदन-ध्वनि को पकड़ना चाहता हो.

दुहाई गंगे...

'कलकल कलकल छहर छहर– एक फूट.'

- बचाओ बाबा बटेश्वरनाथ...

ओसारे पर पानी.

- बाप रे, दुहाई गंगा....

लहरें असंख्य फन फैला कर गांव में घुसीं. घर के कोने कोने में छिपे हुए पापों को खोजती हुई पतितपावनी माता अट्टहास कर उठी. शस्य श्यामला धरती रो पड़ी. गूंगे प्राणियों की आखिरी आवाज घिघियाती हुई पुकार, गंगाजल के कलकल छलछल में डूब गयी.... दुहाई...!!

शाम को ही मनहरना घाट से रेलवे स्टीमर को हटा कर कैसलयाबंड के पास लाया गया था. स्टीमर के सभी कर्मचारी, रेलवे नावों के मल्लाह, बंड ओवरसियर, बंड कर्मचारीगण, कुलियों का एक विशाल जत्था, बंड पर मेला लगा हुआ था. पानी खलासी रह रह कर जरा नाटकीय ढंग से चिल्ला कर रिपोर्ट देता– दो....'

'अरे धुत्त साला... कान फाड़ डाला.' सब हंस पड़ते. गंगा चिढ़ जाती हैं इस हंसी को सुन कर. पानी बढ़ता, लकड़ी के सुफेद खम्भे के काले काले दाग धीरे-धीरे पानी के नीचे डूबने लगे. सब हंसते रहे. स्टीमर रह-रह कर हिल उठता. बंड

पर कोई कमर मटका-मटका कर गाता' छोटी सी मोरी दिल की तलैया, अरे हां डगमग डोले, अरे हां डगमग डोले...

चुप हरामी का बच्चा स्टीमर पर से बूढ़ा फैजू चिल्ला उठता. फैजू के दिमाग में तूफान चल रहा था. स्टीमर के छत पर वह अकेला ही टहल रहा था. डेढ़ सौ से ज्यादा सरकारी कुली दो स्टीमर और पच्चीस नावें. सब बेकार पड़े हैं. हुक्म है स्टीमरों और नावों को सुरक्षित रखो. कुलियों को तैयार रखो. जब तक कि हुक्म न मिले, कुछ मत करो. डी. टी. एस. साहब कंठहारपुर जंक्शन के आरामदेह बंगले में मजे से रेडियो प्रोग्राम सुन रहे होंगे. जिला मजिस्ट्रेट को शायद खबर भी न मिली हो कि दर्जनों गांव के सैकड़ों प्राणी किसी भी क्षण मौत के मुंह में समा जा सकते हैं. आज पांच दिनों से दरिया की हालात खराब है. ओवरसियर से बार-बार कहा कि इस बार पूरब दियारा के गांवों पर आफत है. दरिया के रुझान को भला मैं नहीं समझूंगा. ओवरसियर हंसता था. उसने पढ़ लिखकर पास ज़रूर किया है, लेकिन मेरा जन्म नाव पर ही हुआ है.

घहर घहर... छहर छररर... गंगा गरजती.

फैजू के कानों में पूरब दियारा की, खून को सर्द कर देने वाली, क्रंदनध्वनि रह रह कर पड़ती थी. उसकी बेबसी! वह कुछ नहीं कर सकता. वह चाहे तो उन गांवों के बच्चे को बचा सकता है, कानून? उसकी आंखों के सामने कितने ही डूबते हुए प्राणियों की तस्वीरें नाच जाती. वह बचपन से ही जलचर है. मिट्टी से उसे बहुत कम नाता रहा है. बहुत बार डूबते हुए यात्रियों की करुण पुकार को सुन कर उसने अनसुनी कर दी है. नावों को डूबते छोड़कर भागा है. स्टीमर में खतरे का भोंपा बजाने के पहले लाइफ बेल्ट उसने संभाला है. लेकिन, उस दिन आधी रात को उसका दिमाग गर्म हो रहा था. हुक्म है, दुनिया डूबती रहे, तुम पानी मापते रहो. रिपोर्ट दो. अजीब कानून है.

ट्रान... ट्रान,... ट्रान.

बिरौली के स्टेशन के मास्टर साहब की जान आफत में है. एक ओर घाट स्टेशन बाबू हैं, दूसरी ओर चकमका के. एक जनाब घबराये हुए मिनट मिनट पर रिपोर्ट देते हैं और दूसरे साहब बेवजह की बहुत सी बातें पूछने की आदत से लाचार हैं. ओह, एई घाटवाला और बांचने नहीं देगा. हल्लो... चकमका. हां, मनहरना घाट का इस्टार्न साइड का गांव सब में पानी चला गया. स्टेशन मास्टर का क्वाटर में पानी चला आया. कंठहारपुर बोलिये. क्या? गोडाउन? आरे हमारा गोडाउन में कहां जगह है. तामाक से भर्ती है सो काहे? गोडाउन का बात काहे वास्ते पूछा? अच्छा. हां.

रात भर के जगे मास्टर बाबू कुर्सी पर ही सो गये हैं. प्लेटफार्म पर कोलाहल हो रहा है. घाट स्टेशन के स्टेशन मास्टर साहब बाल बच्चों और स्टाफ को लेकर ट्राली से भाग आये हैं. उनकी आसन्न प्रसूता स्त्री डर से नीली पड़ गयी है. बच्चे रो रहे हैं. स्टेशन मास्टर साहब शरणार्थियों की सी मुद्रा बनाये हुए टहल रहे हैं.

हांफता हुआ आता है बंड का चौकीदार– मास्टर बाबू कहां हैं, मास्टर बाबू? ओवरसियर भेजिन हैं. फैजू बिला हुकुम के पैंतीसो नाव और दोनो स्टीमर ले के चला गया है. कूली और मल्लाह लोग तैयार नहीं होता था. कसम धरा के ले गया है हिंदू को गाय कसम, मुसलमान को क्या जाने कौन कसम,... सब महात्मा जी की जै बोल के स्टीमर खोल दिया. बोला जो रोकेगा उसको बस गंगा मइया को... टेलीफून कर दीजिये बाबू डी. टी. एस. साहब को...

लेकिन उधर तो मुसलमानों की एक बस्ती भी नहीं है? बिरौली स्कूल के हेड पंडित जी के समझ में फैजू की यह हरकत एकदम नहीं आती.

भननन्.... गड़रर... गरगर...

टूटे हुए झोपड़ों के छप्परों और पेड़ों पर बैठे हुए अर्धमृतकों की निगाहें ऊपर की ओर उठती है. हवाई जहाज... हां हवाई जहाज ही है. उनके जीने की इच्छा प्रबल हो उठती है. वे चाहते हैं, चिड़ियों की तरह... हवाई जहाज से उड़ कर हरे भरे मैदानों वाली दुनिया में जाना.

फड़रर... गरगरर...

हवाई जहाज बहुत नीचे उतरकर आसमान में चक्कर काटने लगा. लोगों की निगाहें अचानक चमक उठी. मुंह से अचानक ही एक साथ निकल पड़ा– 'दुहाई गंगा मैया.' लेकिन हवाई जहाज दो तीन बार चक्कर काटकर एक ओर चला गया. सबके चेहरे मुरझा गये. उन्हें कौन समझाये कि हवाई जहाज पर जनाब जिला मजिस्ट्रेट साहब की स्थायी बाढ़ कमेटी के मंत्री के साथ बाढ़ पीड़ित इलाकों का दौरा कर रहे थे.

धू... धू... धू... भू...

जहाज! जहाज!! छप्परवालों ने पेड़ वालों से कहा– 'देखो देखो, जहाज ही है क्या? कदम्ब के पेड़ पर से एक ही साथ दर्जनों गले की आवाज़ आयी– 'हां' जोड़ा जहाज! बहुत-सी नावें भी है... जहाज आ रहा हैं, इधर ही...

आ रहा है? अरे नहीं, कजरोटिया जा रहा होगा. क्या कहा बहुत धीरे-धीरे चलता है? अरे भाई, सब एक ही साथ क्यों हल्ला करते हो. कुछ सुनने भी नहीं देते.

कुछ देर के बाद छप्पर पर के लोगों ने भी देखा कि गंगा की तरंगों पर खेलती हुई, तीर की तरह तेज़ी से बहुत-सी नावें उनकी ओर आ रही हैं. खलबली मच गयी.

छर्रर छपाक...

एक झोपड़ा पानी में फिर गिरा. फिर कोलाहल.... माधो का सारा परिवार डूब रहा है रे बाप.... हाय रे... यह देखो फुलमतिया को, बेचारी ऊब डूब कर रही है.... हे भगवान...

किसी तरह माधो ने अपनी जान बचाई. बुढ़िया भी बची. लेकिन माधो की एकलौती प्यारी बच्ची फुलमतिया डूब गयी.

नावें करीब आती गयीं. लोगों ने अगली नाव पर देखा कप्तान साहब हैं. फैजू कप्तान.... सुनो, कप्तान जी कुछ कह रहे हैं...

'भाइयों' जहाज यहां नहीं आ पायेगा नावों पर एक-एक कर चढ़ते जाओ...

बाढ़ कचहरी.

चकमका मिडल स्कूल में अफसरों की भीड़ लगी हुई है. एक सीनियर डिपुटी मैजिस्ट्रेट साहब बाढ़ इन्चार्ज होकर आये हैं, ओवरसियर, डाक्टर, डि. बो. के चेयरमैन, कम्पाउंडर. सब साहबों के अलग-अलग दफ्तर हैं, स्टेनों हैं, अर्दली और चपरासी हैं. स्कूल के सभी कमरों को सरकारी कर्मचारियों ने दखल कर लिया है. होस्टल में जिला, सबडिविजनल और थाना कांग्रेस कमिटियों के दफतर हैं. सभी दफ्तरों के सभापति, मंत्री, आफिसमंत्री और पिउन हैं. होस्टल के सभी कमरे अर्ध सरकारी साहबों के कब्जे में है. कॉमन रूम का संयुक्त बाढ़ रिलीफ कमेटी की मिटिंग के लिए सुरक्षित रखा गया है. स्वयंसेवकों के लिए सामने मैदान में कुछ तम्बू दिये गये हैं. सब मिला जुला कर एक भयावह वातावरण की सृष्टि हो गयी है. जनता इस ओर भय और सम्मान की निगाह से देखती है.... बाढ़ कचहरी.

सभी दफ्तर मशीन की तरह चल रहे हैं– देखिये सभी दरखास्तें प्रापर चैनल से आनी चाहिए. सबसे पहले उस पर थाना कांग्रेस कमिटी के दफ्तर की मुहर होनी चाहिए, फिर स. डि. कांग्रेस और जिला कांग्रेस वालों का नोट. समझते हैं तो? हां, नहीं तो पीछे मुश्किल हो जायगा. सीधे कोई दरखास्त मत लीजिए. जरा सा कुछ हो जाने से ही मामला प्राईम मिनिस्टर तक. हां, समझते हैं तो.... और हां, सुनिये. जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री... और हां, धर्मदेव बाबू, उनके नोट को ठिकाने से पढ़ियेगा.

चपरासी आकर सलाम करता है– हजार दो कांगरेसी बाबू आये हैं. साहब कुर्सी छोड़कर उठे– नमस्ते आइये.

हमलोग सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता हैं. बाढ़ पीड़ितों की सहायता करने आये हैं. कल कलक्टर साहब से बातें हुई. उन्होंने आपसे मिलने को कहा. हमलोग के साथ तीस विद्यार्थी हैं.

ओ, सोशलिस्ट पार्टी के वर्कर हैं आपलोग?– साहब को गुस्सा आ रहा था अपने चपरासी पर. बदतमीज ने

सोशलिस्टों को भी कांग्रेसियों में शुमार कर दिया. नहीं तो मुझे कुर्सी छोड़कर उठने की क्या ज़रूरत था. –बोले - ठीक है कहिये.

– हमलोग स्टेशन प्लेटफार्म पर पड़े हैं. हमारे रहने के लिए जगह का इंतजाम कर दीजिये और स्वयंसेवकों के भोजन का....

देखिये, जगह का तो बड़ा दिक्कत है. वहां तो देख ही रहे हैं... धर्मदेव बाबू के लिए अभी तक अलग रसोई घर का बंदोबस्त नहीं हो सका है. वे मखमली परदे से दूर रहते हैं न...

स्टेशन के प्लेटफार्म पर तो... अच्छा देखा जायेगा.

और एक बात पूछनी है बिरौली स्टेशन के पास रिलीफ कम्प नहीं रखकर चकमका रखने से कोई खास सुविधा है क्या?

जी? हां, यहां के स्टेशन का माल गोदाम अभी एकदम खाली है. रिलीफ कमिटी का गोदाम ठहरा....

नमस्ते!

नमस्ते. अरे हां, सुनिये. कांग्रेस से अलग हो गयी है न आपकी पार्टी?... हां, सो तो ठीक है. लेकिन फिर भी.... आपकी पार्टी के जन्मदाता तो मालवीय जी थे न? नहीं? अरे हां साहब आपको पता नहीं. आखिर हमलोग भी तो कुछ पढ़ते-लिखते हैं.... नेशनलिस्ट पार्टी? हां, हां, मालवीय जी नेशनलिस्ट पार्टी के थे. ठीक ठीक. अरे साहब रोज बरोज इतनी पार्टी हो रही है कि याद रखना मुश्किल है.... ओ, मार्क्स साहब... कोई पारसी थे क्या?... ओ ठीक ठीक. नमस्ते.

हजोर सेठ कुंदनमल आये हैं.

आइये सेठ जी. कहिये क्या खबर लाये?

हजुर उदर तो ठीक है. कड़क्टर साब तो पहले कांगरेस सुबापति (सभापति) पर बात फेंक दीहिन. मैंने कहा हुजुर तीन तीन सुबापति की बात है. फिर बाढ़ कुमेटी के शिकरेटरी साब हैं. भोत हंगामा है. और कड़कटर साब तो राजी हो गये. अब परस्तुती (परिस्थिति) है कि सिपड़ाई ऑफिसर (सप्लाई ऑफिसर) को राजी करना है. हुजुर से...

ठीक है. सब ठीक हो जायगा. बताइये फिर कलकत्ते कब जा रहे हैं. मुझे एक रेडियो मंगाना है. खुद तो जा नहीं सकता....

हुजुर कोई बात नहीं. सब ठीक हो जायगा. हम आज ही कड़कत्ता गिद्दी (गद्दी) में खबर देते हैं. डालिमचंद कड़कते हैं. उसके लिए आप बेफिक्र रहिये कंट्रोल के समय में डालिमचंद ने इतना रेडियो खरीदा है कि एकदम उस्ताद हो गया है. जी? जानीवाकर? आज ही भेज देता हूं. जी उसके लिए आप बेफिक्र रहिये. म्हारा नौकर शिवदास एकदम उस्ताद है. पांच बरस में एक-दम उस्ताद हो गया है.

आइये धर्मदेव बाबू.

हुजुर, वे सोशलिस्ट पार्टी वाले कहां से आये थे?... लेकिन सवाल है कि सहायता वे रिलीफ कमिटी की करने आये हैं या बाढ़ पीड़ितों की? तो गांवों में ये लोग खामख्वाह हर जगह अड़ंगा डालने पहुंच जाते हैं.

स्टेनों बाबू को सलाम दो.

हां देखिये. लाखिये टू द मैनेजर... न दी, सेक्रेटरी सोशलिस्ट पार्टी. योर सर्विस...

अरे आप यह कह रहे हैं? धर्मदेव बाबू रोकते हैं. लिखा-पढ़ी की क्या ज़रूरत है? चपरासी से खबर दे दीजिये.

मोहनपुर कम्प.

मोहनपुर हाट जरा ऊंचा जगह पर है. यहां कैम्प है. हजारो की तायदाद में लोग पड़े हैं, कुछ झोपड़े पड़े हैं, कुछ बन रहे हैं. रिलीफ कमेटी वाले यहीं आकर चीज़ें बांटते हैं. हर काम में अड़ंगा डालने वाले सोशलिस्टों ने भी यहीं कैम्प बनाया है. बंटवारे के समय, रोज जो हल्ला हो रहा है सो इन्हीं लोगों के चलते. अकेला जग्गू भोलंटियर. बेचारा करे तो क्या? लोगों को वह बराबर समझाता था कि सुराजी सरकार के दो दुश्मन. मुस्लिग और सुशलिंग. मुस्लिम तो हार गया, अब सुशलिंग है. लोग न सुनें, उपर भगवान त हैं. सब ने देख लिया न! सुशलिंग वाले जिन लोगों की सिफारिश करते हैं उनकी दर्खास्तें नामंजूर हो जातीं है....

रात में नारायणपुर वालों और कुरसा कांटा वालों में लड़ाई होते होते बच गयी. नारायणपुर वाले कह रहे थे कि कुरसा कांटा वालों को सुराजी सदावर्त लेने का कोई हक नहीं. डिस्टीबोट चुनाव में कांगरेस को भोट नहीं दिया था. कुरसा कांटा वालों का कहना है कि बंटवारा मुंह देखकर होकर होता है, जाति पूछकर होता है. कुरसाकांटा में भूमिहार नहीं है न. नारायणपुर वालों को कल पांच टीन किरासन तेल मिला और कुरसा कांटा वालों के समय मोमबत्ती भी घट गयी. राजधाम के सभी मुसहर बगैर कपड़े के हैं और चैनपुर वालों को जोड़ा धोती मिली है. बहुत बात बढ़ गयी.

... और खामख्वाह अड़ंगा डालने वाले सुश्लिंग लोग क्या करेंगे? खुद उनके भोलटियरों को खाना नहीं मिलता. सुकुमार लड़के क्या खाकर भोलटियरी करेंगे. ज्यादातर बीमार है. वैसे ही यह डाक्टर लोग. प्रांत से आये हैं. चेयरमैन साहब के हुक्म के खिलाफ़ काम करते हैं. कहते हैं कि वे चेयरमेन के नौकर नहीं. अपने मन से सब दवा बांटते हैं. पार्टी वालों से बड़ा हेलमेल है. जग्गू भोलेंटियर का इस रिपोर्ट का जि. कांग्रेस कमेटी के ऑफिस मंत्री जी बहुत ध्यान से सुनते.

सोशलिस्ट पार्टी के इन्चार्य साहब खाट

पर लेटे लेटे खत लिखवा रहे हैं– ध्रुव जी! अब मैं भी पड़ गया. एक दर्जन से ज़्यादा लोग बीमार हैं. पैसा नहीं है. भोलानाथ भाई की खबर दीजिये. वैसे स्वयंसेवक... खुद आवें. मामला कुछ अजीब हो रहा है. सिलारी के ज़मींदार साहब बाढ़ कमेटी में लिये गये हैं. उनके आठ, दस सिपाही आज मोहनपुर आये हैं. यहां अंधाधुंध चल रहा है. लूट मची हुई है. सेठ कुंदनमल और जमींदार साहब का गुटबंदी हुई है. कपड़े, अनाज और किरासन का ठेका सेठ जी को मिला है और बांस फूस का जमींदार साहब को.

जै गंगा मैया की जै!!

पानी घट गया. ज़मीन धीरे-धीरे सूख रही है. गंगा की काली मिट्टी खेतिहरों को बुला रही है– आओ बोओ और पांचगुना उपजाओ. आज आखिरी बंटवारा था. बांस, फूस, रस्सी, अनाज, बीज और पैसे. लोग अपने-अपने गांवों को जा रहे हैं. बीमार, बेघरबार, सर्वहारा, की टोली बचे-खुचे मवेशियों के झुंड के साथ जा रही है. जिन्हें सहायता मिली है वे खुश हैं. जिन्हें नहीं मिली, उनके मन में गुस्सा है. जम्मू भोलंटियर सबसे कहता है फिरता है- किस्सा खतम और पैसा हजम.

पार्टी वालों का भी कैम्प टूट रहा है. एक दर्जन से ज़्यादा बीमार स्वयंसेवकों को एक ही बैलगाड़ी पर लादकर चकमका भेजा जा रहा है.

मनहरना घाट के बाबू अपने परिवार के साथ स्टेशन को लौट गये. बिरौली स्टेशन के मास्टर बाबू का बेटा टायफाड से मर गया. बेचारे का दिमाग खराब हो रहा है शोक से. लेकिन छुट्टी नहीं मिली.

बूढ़ा फैजू अपने पैंतीस मल्लाहों और बीस कूलियों के साथ बर्खास्त कर दिया गया है. गंगा शांत है. जहाज धू-धू कर कजरोटिया की ओर जा रहा है और फैजू पैदल गांव की ओर जा रहा है.

डॉक्टरों से ज्वाब-तलब किया गया है. क्यों नहीं उनलोंगो ने दवाईयों का स्टाक सरकारी मालगोदाम में रहने दिया. चेयरमैन साहब से अभद्र व्यवहार क्यों किया और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के अनुरोध करने पर भी रिलीफ कमेटी के साथ काम क्यों नहीं किया. नौजवान डॉक्टरों की टोली स्वस्थ हंसी हंसती है! ठहाका मारकर.

केसलयाबंड के ओवरसियर साहब की तरक्की हो गयी. चकमका का माल गोदाम आज फिर खाली हुआ. चकमका स्टेशन मास्टर ने डेढ़ महीने की छुट्टी ली है. उन्हें बहुत काम करना है. लड़की की शादी, ज़मीन खरीद से लेकर और भी बहुत छोटे बड़े काम.

बाढ़ कचहरी बर्खास्त हुई जाघन कबाड़ी ने बैरा से बहुत-सी चीज़ें सस्ते दर में खरीदी हैं– पोल्सन मक्खन के साथ राशन के अन्य सामान. किस्म किस्म के

कपड़े.... टोकड़ी में फेंकी हुई है दर्खास्तें -चार बंडल यानि एक मन.

खराब जलवायु के सेवन से धर्मदेव बाबू का स्वास्थ काफी गिर गया है. वे किसी पहाड़ पर जा रहे हैं.

जै गंगा....

सेठ कुंदनमल ने कठहारपुर में अपने मिल के अंदर अखंड गंगा कीतन की व्यवस्था की है. इस अवसर पर एक भारी प्रीतिभोज का आयोजन किया गया है. जिले भर के छोटे-बड़े हाकिमों को दावत दी गयी है. इसी अवसर पर जिला कांग्रेस कमेटी वालों ने कठहारपुर में बैठक का प्रबंध किया है. सेठजी के बंगले के सामने सैकड़ों कुर्सियां लगी हुई हैं. एक ओर विभिन्न कीर्तन समाजवाले चिल्ला चिल्ला कर गा रहे हैं और नाच रहे हैं. एक बंगाली मंडली बड़े सुरीले स्वर में गा रही है– बंदो माता सुरधुनी, पतित पावनी, पुरातनी, गंगे गंगे...

मेहमान आ रहे हैं. कांगरेसी मेहमान को देखकर एक मंडली ने राम-धुन शुरू किया– रघुपति राघव राजा राम.

सेठजी हंस-हंस कर आगंतुकों का स्वागत कर रहे हैं. आज वे हाथ जोड़कर नया अभिवादन करते हैं– जै गंगा! जै गंगा...

(7 नवंबर 1948 को 'जनता' में प्रकाशित)

ताले की कुंजी

बात करने की सुविधा– अर्थात् ताले की कुंजी. पर वही कुंजी जिसके साथ ताला खुले ही, ऐसा कोई दावा नहीं है; ताला अपनी जगह रह जाए, पर हम कमरे से बाहर छूट गये होने के असमंजस से छुटकारा पा जाएं. अब सोचिए– 'छुटकारा पाना' तो ताले का खुलना है : पर 'छूट गये होने से छुटकारा'– वह क्या होता है? ताले से बाहर रह गये होने की कैद से मुक्ति?

तार्किक एक युक्ति पर हमें हंसा देता है; कवि वहीं पर हमें टोक देता है कि जिस बात पर हम हंस दिये हैं वह तो एक गहरी सचाई है. युक्ति तो केवल भाषायी सौष्ठव का एक अंग है, एक वेश है; सचाई तो उसके भीतर वेष्टित है. कवि तो हमेशा सोचता है कि उसका घर ताले-कुंजी से ही क्यों, द्वार-दीवार की झंझट से भी मुक्ति होगा–तभी तो वह घर होगा.

– कन्हैयालाल नंदन

मैथिली कहानी

नेपथ्य का अभिनेता

● फणीश्वरनाथ ‘रेणु’

हालांकि इसके पहले उसे पचासों मर्तबे देख चुका था, फिर भी उस दिन उसे देखकर चिहुंक उठा. चकाचौंध-सी लग गयी. लगा, जैसे बिन मौसम का कोई फूल अथवा फल देख रहा हूं. सावन-भादो की इस किचकिच में, इस बरसात में यह कहां से आ गया? क्यों?

मैं ही नहीं, उसे देखकर हर चीन्हा-अनचीन्हा अकबकाकर ठिठक जाता है. कोई-कोई उसके टेबल के पास जाकर कुछ पूछता भी है. और मैं यह भी देखता हूं कि वह घनघोर अनाटकीय ढंग से उसके छोटे-मोटे जवाब भी दे रहा है.

मेरे लिए अब यह समझना मुश्किल नहीं रह गया कि जो कोई भी उसे फारबिसगंज की इस छोटी-सी चाय की दुकान की एकहत्थी कुर्सी पर बैठे देखता है, वह थोड़ी देर के लिए अचकचाकर क्यों रह जाता है?

मैंने मन ही मन अटकल लगायी– यही कोई तीस-इकतीस साल पहले इस व्यक्ति को पहली बार देखा था– सन 1929 में. उसी साल पहली बार गुलाब बाग के मेले में इतने करीब से हवाई जहाज को भी देखा था. इसीलिए सन्-ईस्वी आदि सबकुछ आईने की तरह झकाझक याद है. सन् 1929 में मैं यही कोई आठ-नौ साल का रहा होऊंगा. उसी साल गुलाबबाग के मेले में कलकत्ते की मशहूर थिएट्रिकल कम्पनी आयी थी. लोग पागल की तरह उमड़े पड़ रहे थे. तिल धरने तक की जगह नहीं थी. मंच पर ही गाड़ी आ जाती थी इंजन सहित– सीटी बजाती, धुआं उगलती और लाल, पीली, हरी रोशनी में परियां नाचती, गातीं. ओह! कितना रमणीय होता था यह सब.

ज़िंदगी में पहली बार थिएटर देखकर उत्तेजित हो उठा था. आज भी वे दिन वैसे ही याद हैं. कितना हैरतअंगेज़!

मगर जब स्कूल खुला था, तब सहपाठी बकुल बनर्जी ने मेरा मन एकदम छोटा कर दिया. हालांकि वह भी उस समय आठ-नौ साल का ही था, मगर था बड़ा ही होशियार. जन्मजात आर्ट क्रिटिक. उसके कथन के अनुसार इस नकली कम्पनी में पिछले साल नागेश्वरबाग मेले में आयी हुई असली कम्पनी से छंटकर आये हुए

लोग हैं. बकुल ने कहा था कि नागेश्वरबाग मेले में आयी कम्पनी की बातें तो सभी को मालूम है. ....चौबीस घंटे के भीतर भीतर कम्पनी को मेला छोड़कर चले जाने का हुकुम कलेक्टर साहेब ने दे दिया था. ..... कलेक्टर साहब का कहना था कि यदि दो दिन भी और यह कम्पनी मेले में रह गयी तो यह जिला दरिद्र हो जाएगा, कंगाल हो जाएगा. मगर, अंत में मुझे उदास देखकर बकुल ने कहा था– 'तोब एक ठो बात हाय. ईस कम्पनी में रेलवे पोर्टर का पार्ट जो किया है, नागेश्वरबाग में आया हुआ कम्पनी में भी ओही मानुष ये पार्ट कोरता था. यानी, वेटिंग रूम में सोये हुए लेरिका को मारता था, छूरा से... ऊशको तो नेकली नहीं कहने शोकते...

आज भी सारी बातें ऐसे ही याद हैं ...गुलाबबाग का मेला... पंजाब मेल... रेलवे पोर्टर ...छोकरे का खून... बकुल की बातें...

तकरीबन चार या पांच साल के बाद सिंहेश्वर मेले में आयी उमाकांत झा कम्पनी में इस व्यक्ति को फिर से देखा था. 'बिल्वमंगल' नाटक में चिंताबाई की मजलिस में भोथिया के बाबाजी के वेश में– 'काया का पिंजरा डोले रे, सांस का पंछी बोले रे' गाता हुआ. बड़ा ही सुरीला कंठ था. गुलाबबाग वाली कम्पनी में छोकरी की हत्या करने वाले खूनी का पार्ट करने वाला बाबाजी के गेरुए वस्त्र में अपनी बोली ज़्यादा देर तक छुपा नहीं सका था. मैं झट्ट से चीन्ह गया था. मगर जब उसने पारसी नौटंकी की शैली में कवित्त पढ़ा था– 'मृदंग कहे धिक है धिक है, मंजीर कहे किनको किनको'.... तब हाथ नचाकर गणिका कहती– 'इनको, इनको, इनको, इनको'. फिर तो मुझे ज़रा भी संदेह नहीं रह गया था. खूब अच्छे तरीके से पहचान गया था बाबाजी को– वही था, जो गुलाबबाग वाली कम्पनी में वेटिंग रूम में सोये लड़के को छुरा भोंकने से पहले कांपते हाथों और थरथराते छुरे को देखकर पागल की तरह बड़बड़ा उठा था– 'क्यों मेरे हाथ! तू क्यों थरथरा रहा है? तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है. मत कांप मेरे खंजर. बर्बाद मत वक्त कर. सोया है शिकार चादर तानकर. ले, तू भी अपना काम कर.'

बस की डुग्गी पर बड़ी ज़ोर से चोट पड़ी थी. एकदम से हड़बड़ा गया था. मुझे सबकुछ वैसे ही याद है.

इसके बाद– फिर तीसरी बार– आद्या प्रसाद की नाटक कम्पनी के 'श्रीमती मंजरी' में अंग्रेज़ जज का वेश बनाकर टेबल पर काठ का हथौड़ा ठोंकता, शांति स्थापित करता, यह व्यक्ति बोला था– 'वेल मोंजरी बाई! हाम तुमको सीरिमोटी मंजरी का खेटाब डेटा हाय. आज से हाम तुमको सीरिमोटी मोंजरी बोलेगा. हाम बोलेगा तो शोब बोलेगा. शोमझा?' और

इस दृश्य के बाद थोड़ी देर के बाद वही गीत गाता हुआ स्टेज पर आया था– 'काया का पिंजरा डोले रे...' अपने उसी पुराने तर्ज पर...

कभी भी, कहीं भी, उसे पहचानने में कोई भरम नहीं रहा. हर जगह पहचानता गया.

कितनी ही दफे मैंने उसे देखा है. लेकिन ऐसे बेमौसम नहीं. अनटाइमली नहीं. इस झहरते सावन-भादो में नहीं. हमेशा इसी मेले के मौसम में देखा है. यानी, कार्तिक से चढ़ते वैशाख तक. इसलिए आज अचानक इस चाय की दुकान पर बैठे देखकर मैं जैसे चिहुंक उठा– उसमें भी इस बूंदाबांदी की बेला में!

मैंने अनुमान लगाया– इस बार सम्भवत: दस-ग्यारह सालों के बाद उसे इस इलाके में देख रहा हूं. इसलिए अचरज हुआ. एक उत्सुकता भी हुई.

वह दुकान की कुर्सी पर बैठा ज़रूर था. मगर, वह था कहीं और. उदास, उखड़ा, डूबा हुआ. मेघ का झहरना वह बड़ी देर से टकटकी लगाकर देख रहा था.

वह... वह... हत्यारा पोर्टर... बाबाजी... अंग्रेज़ जज... उपदेशक... सिपाही... डाकू... अंधा फकीर आदि आदि. सब एक ही इंसान... एक ही!

बहुत ज़ोर से बिजली चमकी, मेघ गरजा और बड़ी देर के बाद उसने वही मुद्रा बनायी, जिसमें 'काया का पिंजरा' वाला गीत वह गाता था स्टेज पर.

इतनी देर के बाद अब मेरी नजर उसकी पहनी हुई शर्ट पर पड़ी. कार्टून की छाप मिट रही थी. मैल जम रही थी. नये डिजाइन की टूटी हुई चप्पल. उसने उचककर गम्भीर नजर से चायवाले को देखकर कहा– 'एक इधर भी...'

उसकी आवाज़ सुनकर यह समझने में ज़रा-सा भी संदेह नहीं रह गया कि हत्यारा पोर्टर अथवा दिल दहला देनेवाला भयंकर डाकू या रोबीला जज अथवा शांत उपदेशक आदि– आदि वाला यह व्यक्ति अब बूढ़ा हो गया है.

चाय उसे भी मिली और मुझे भी.

चाय का एक घूंट पीते न पीते मुझे याद आया कि कैसे उन दिनों, यानी बचपन में रात वाले स्टेज के एक्टरों को दिन की रोशनी में सड़क पर या मेले में चलते देखकर आश्चर्य होता था. कैसे उन लोगों की ये सब बातें– उनका बोलना बतियाना आदि कितना अद्‌भुत लगता था! विचित्र, किंतु अच्छा!

याद आया– फारबिसगंज मेले में एक थिएटर कम्पनी के कुछ एक्टरों के पीछे मैं बहुत देर तक घूमता रहा था. पान की एक दुकान पर सभी खड़े थे. पीछे मैं भी खड़ा था. उस दल में ढेर सारे लोग थे– यानी लैला मजनू और फरहाद, राजा, डकैत के हाथों से राजकुमारी को छुड़ाने वाला राजकुमार और ज़रूरत पड़ने पर

सभी खेलों में जल्लाद बनने वाला और सभी के साथ 'काया का पिंजरा' गाने वाला यह. मुझे पीछे खड़े देखकर यह बोला भी था– 'क्यों बे छोकरे! इस तरह क्यों घूम रहा है पीछे पीछे? पॉकेट मारेगा क्या?'

उस उम्र में, यानी बचपन में भी यह लग गया कि यहां आत्मसम्मान पर आघात पड़ा है. अहम जाग उठा. करारा उत्तर दिया था– 'आपके पॉकेट में है ही क्या जो कोई मारेगा?'

आपको इस इलाके में देखकर मुझे काफी हैरानी हो रही है. आप किस कम्पनी में हैं? 'साहब! अब कहां की कम्पनी और कैसा थिएटर! फिलिम सबको खा गया.'

'क्यों?' अप्रतिभ होता हुआ यह बोला था– 'तू यह कैसे जानता है कि मेरा पॉकेट खाली है?' हालांकि उन दिनों मैं अपने स्कूल की सबसे ऊंची कक्षा में पढ़ता था और मास्टर साहब के आदेशानुसार प्रत्येक अपरिचित से अंग्रेज़ी में ही बात करने का अभ्यास था, फिर भी मैंने खड़ी बोली में ही उत्तर दिया– 'क्यों? रात जो भीख मांग रहे थे– 'दाता तेरा भला हो'.

सभी ठठाकर हंस पड़े थे. उसने कहा था– 'छोकरा तेज है.'

फिर तो मज़बूरन मुझे अपनी अंग्रेज़ी की लगाम ताननी पड़ी थी– 'यू सी मिस्टर रेलवे पोर्टर, एक्टर. डोंट से मी छोकरा. आई एम ए मैट्रिक स्टूडेंट. यू नो?'

इतनी पुरानी बात याद आने पर मेरे होठों पर हंसी खेल गयी. मन में प्रश्न उठा कि अभी यह किस कम्पनी में काम करता है? क्या अभी भी वैसे ही रोबीले डायलॉग बोलता है? वैसे ही स्टेशन के वेटिंग रूम में लड़के पर खंजर चलाता है? वैसे ही... वैसे ही...'

मेरी तंद्रा भंग हुई. उसकी चाय खत्म हो गयी थी और वह मेरी टेबल के पास आकर खड़ा हो गया था. उसने पूछा– 'आप मुझे पहचानते हो सेठ?'

मैंने उसकी बांह पकड़कर उसे बिठाते हुए कहा– 'मैं कोई सेठ-वेठ नहीं हूं. खालिस आदमी हूं. बताइए, आजकल आप किस कम्पनी में हैं? बेमौसम आपको इस इलाके में देखकर मुझे काफी हैरानी हो रही है. आप किस कम्पनी में हैं?'

'साहब! अब कहां की कम्पनी और कैसा थिएटर! फिलिम सबको खा गया.' उसने हंसने की निरर्थक चेष्टा की.

'आपने कितनी कम्पनियों में काम किया है?'

'साहब, पंद्रा.' लगा जैसे सब के सब उसकी यादों के पिटारे में सहेजकर रखे हुए हैं. पल भर के विराम के बाद मेरी

ओर शून्य दृष्टि से देखते हुए बोला– 'नौ साल की उम्र में पहली बार स्टेज पर उतरा था– क्रिशन के रोल में.'

अब मुझे अनुभव हुआ कि मेरे सामने बीते हुए युग का एक शेषांश बैठा हुआ है. पारसी थियेटर का एक टूटा हुआ अभिनेता.

सिगरेट बढ़ाते हुए मैंने पूछा– 'तो आजकल क्या करते हैं आप?'

उसने क्षण भर चुपचाप मेरी ओर देखा. फिर सिगरेट से लगाते हुए कहा– 'क्या करूंगा साहब! वह जो किसी शायर ने कहा है ना कि 'इश्क ने कर दिया निकम्मा...'

उसने हंसने का असफल नाटक किया– 'दस साल बाद इस इलाके में आया हूं. क्या बताया था लोगों ने नाम? मिथिला देस. ...साहब, इस इलाके में नाटक के शौकीन काफी लोग हैं... जाने को तो फिलिम में भी गया. लेकिन जी नहीं लगा.' बोल कर उसने कनखी से इधर-उधर देखा. फिर दयनीय दृष्टि से मुझे देखते हुए धीरे-धीरे बोला– 'साब! एक्सक्यूज मी. फ्रॉम लास्ट टू डेज, आई एम हंगरी. वेरी हंगरी. बट, मांगने की हिम्मत नहीं होती किसी से.'

उसका यह अंग्रेज़ी डायलॉग घोर अनाटकीय था. मैं कुछ कहने को था ही कि अपने चेहरे पर मांगने का भाव लाकर वह लगभग गिड़गिड़ाते स्वर में बोल उठा– 'हुकुम हो तो कुछ पेश करूं... अब तो यही एक सहारा बचा हुआ है. डिरामे के कुछ पुराने शौकीन मिलते हैं, सुना देता हूं. जी हल्का हो जाता है और कुछ...'

वह जैसे तड़पकर उठा और अपनी पंक्ति को अपूर्ण छोड़कर कोने में रखी अपनी अटैची ले आया. एक काली लुंगी निकालकर मुंह ढंक लिया. फिर लुंगी का पर्दा उठाया. तलवार कट मूंछवाली एक विचित्र आकृति प्रकट हुई. मध्यम स्वर में ही वह बोला– 'यह एक उदास, निराश नौजवान प्रेमी का डायलॉग है.'

वह एक बार खांसा. फिर बोला– 'ज़ालिम चपला! यह तूने क्या किया? तूने मेरे दिल के हजार टुकड़े कर दिये ज़ालिम! तूने यह क्या कर डाला! ...क्यों कर डाला? ...चपला! ...चपला! ...कहां चली गयी यूं चपला?'

'चली तू चपला मुझे तड़पता छोड़कर...'

इसके बाद हिचकी लेते हुए उसने जो संवाद कहे, वह मैं यहां नहीं कह सकूंगा.

दुकान में लोगों की भीड़ लग गयी थी. चारों ओर से लोग उचक-उचक कर उसे देख रहे थे. सभी के चेहरों पर एक विचित्रता एवं कौतूहल का भाव था. लेकिन सभी के सभी चुप और स्तब्ध थे. सिर्फ मेघ बाहर रह रहकर गरज उठता था.

उसने फिर से अपनी आकृति पर लुंगी का पर्दा गिराया. यानी कि स्वयं को वह ग्रीन रूम में ले गया. इस बार बड़ी-बड़ी

मूंछोंवाला सरदार बनकर निकला. पर्दा उठा. वह गरजा– 'क्यों बे बदकार! बता! बता कहां है? कहां है राजकुमार? कहां है वह मक्कार की औलाद......'

इस जोशीले संवाद की उठापटक में उसके नकली दांतों का सेट अचानक से छिटककर मुंह से बाहर आ गया.

इस प्रकार से उसने दर्जनों मुखड़े बनाये. जाने कितने संवाद सुनाये. अंत में अपनी टोपी को भिक्षा पात्र बनाता लोगों की तरफ देखता हुआ बोला– 'दाता, तेरा लाख लाख भला हो. आना दो आना. दो पैसे ही सही...'

मेरे पैर धरती से सट गये. मन पर ज़रा चोट-सी लगी. एक झटका-सा लगा. इस व्यक्ति ने अपनी कला के जादू से कितने वर्षों को पीछे धकेल दिया है. मैं पुनः वर्तमान में आ गया. देखा, बकुल बनर्जी मेरी ओर टुकुर-टुकुर ताक रहा है. जरा-जरा सी, पता नहीं कैसी तो हंसी हंस रहा है.'

बकुल थोड़े जोर से उससे पूछ बैठा– 'क्यों एक्टर मोशाय! काल एतना मेहनत से चांदा कोरके दिया. शो, शोब, एक ही रात में भाट्टी में फूंक दिया? बाह रे मोशाय?'

जन्मजात आर्ट क्रिटिक मेरा सहपाठी बकुल बनर्जी आज भी कला और कलाकार को पहचानने का धंधा वैसे ही करता है. सदा एक जैसा ही रहा. मेरी तरफ देखते हुए बकुल बोला– 'तू भी इसका बात में फांस गया. मुझसे काल ई बोल रहा था– फ्रॉम टू डेज, आई एम हंगरी... .'

पता नहीं क्यों, मुझे उस समय बकुल की ऐसी बातें अच्छी नहीं लगीं. उसे चुप ही रहने का इशारा किया और लगभग फुसफुसाते हुए पूछा– 'बकुल! इसकी डोलती हुई काया के पिंजरे में जो पंछी बोल रहा है, उसकी बोली को सुनकर तुमको कुछ नहीं लगा? ठीक-ठीक बताना.'

बकुल जैसे अवाक हो गया. निमिष मात्र स्तब्ध रहा. फिर धीरे-धीरे बोला– 'नहीं लोगता कुछ तो काल को शारा-शारा दिन इसका साथ भीख नेई मांगता. चांदा भी तो भीख ही हुआ न!'

वह एक लम्बी सांस छोड़ते हुए बोला– 'क्या बोलें, कैसा लागा! लागा, तुम्हारे या ओन्नो दोस्त शोब का शाथ रात भर हॉस्टल से बाहर भागकर थिएटर देखने गया होऊं.'

मैंने कहा– 'हां बकुल, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा.'

तब तक वृद्ध एक्टर ने अपने दूसरे पुराने प्रसिद्ध गीत की पहली पंक्ति आरम्भ कर दी थी–

'सुबह हो गयी, निकल गये तारे,
मुझे छोड़ो, चलो मेरे प्यारे.'

हम लोगों के मन में अचानक फिर से मेले का मौसम जगमगा उठा.

(हिंदी रूपांतर– विभा रानी)

रेणु की कविताएं

यह फागुनी हवा

यह फागुनी हवा
मेरे दर्द की दवा
ले आई...ई...ई...ई
मेरे दर्द की दवा
आंगन बोले कागा
पिछवाड़े कुकती कोयलिया
मुझे दिल से दुआ देती आयी
कारी कोयलिया-या
मेरे दर्द की दवा
ले के आयी दर्द की दवा!

बन-बन, गुन-गुन बोले भौरा
मेरे अंग-अंग झनन
बोले मृदंग मन–
मीठी मुरलिया
यह फागुनी हवा
मेरे दर्द की दवा ले के आयी
कारी कोयलिया!
अग-जग अंगड़ाई लेकर जागा
भागा भय-भरम का भूत
दूत नूतन युग का आया
गाता गीत नित्य नया
यह फागुनी हवा...!

मेरा मीत सनीचर

पद्य नहीं यह, तुकबंदी भी नहीं, कथा सच्ची है,
कविता जैसी लगे भले ही, ठाठ गद्य का ही है.

बहुत दिनों के बाद गया था, उन गांवों की ओर
खिल-खिल कर हंसते क्षण अब भी, जहां मधुर बचपन के
किंतु वहां भी देखा सबकुछ अब बदला-बदला-सा
इसीलिए कुछ भारी ही मन लेकर लौट रहा था.

लम्बी सीटी देकर गाड़ी खुलने ही वाली थी
तभी किसी ने प्लेटफार्म से लम्बी हांक लगायी,
'अरे फनीसरा', सुनकर मेरी जान निकल आयी थी
और उधर बाहर पुकारने वाला लपक पड़ा था
चलती गाड़ी का हत्था धर झटपट लटक गया था
हांक लगाता लेकर मेरा नाम पुन: चिल्लाया–
'अरे फनीसरा, अब क्यों तू हम सबको पहचानेगा!'
गिर ही पड़ता, अगर हाथ धर उसे न लेता खींच.
अंदर आया तब मैंने उसकी सूरत पहचानी
'अरे सनिचरा' कहकर मैं सहसा ही किलक पड़ा था.
बचपन का वह यार हमारा ज़रा नहीं बदला था–
मोटी अकल-सकल-सूरत, भोंपे-सी बोली उसकी
तनिक और मोटी, भोंडी, कर्कश-सी मुझे लगी थी.
पढ़ने-लिखने में विद्यालय का अव्वल भुसगोल
सब दिन खाकर मार बिगड़ता चेहरे का भूगोल
वही सनिचरा? किंतु तभी मेरे मुंह से निकला था–
'कुशल-क्षेम सब कहो, सनिचर भाई तुम कैसे हो?'
बोला था वह लगा ठहाका, 'हमरी क्या पूछे हो
हम बूढ़े हो चले दोस्त, तुम जैसे के तैसे हो.'

बात लोक कर अपनी बात सुनाने का वह रोग
नहीं गया उसका अब भी, मैंने अचरज से देखा
मुझे देख कर इतना खुश तो कोई नहीं हुआ था!
मौका मिलते ही उसने बातों की डोरी पकड़ी
अब फिर कौन भला उसकी गाड़ी को रोक सकेगा?
'सुना बहुत पोथी-पत्तर लिख करके बड़े हुए हो,
नाम तुम्हारा फिलिम देखने वाले भी लेते हैं
और गांव की 'रायबरेली' में किताब आयी है,'
'मेरा चल' क्या है? यह तुम्हारी ही लिखी हुई है?
तुम न अगर लिखते तो लिखता ऐसा था फिर कौन?
बोर्डिंग से हर रात भाग कर मेला देखा करता था
इसीलिए अब सबको, मेला चलने को कहते हो
मैंने समझा ठीक, काम यह तुम ही कर सकते हो।

अरे, याद है वह नाटक जिसमें तुम कृश्न बने थे
दुर्योधन के मृत सैनिक का 'पाट' मुझे करना था
ऐन समय पर पाट भूल उठ पड़ा और बोला था–
'नहीं रहेंगे हम कौरव संग, ले लो अपना पाट,
सभी मुझे जीते-जी ले जायेंगे मुर्दा-घाट!
आंख मूंद सह ले अब ऐसा मूरख नहीं सनिचरा!
कौरव दल में मुझे ठेल, अपने बन गया फनिसरा
किशुन कन्हैया चकर सुदरसनधारी सिरी भगवान!
रक्खो अपना नाटक थेटर हम धरते हैं कान!
जीते जी हम नहीं करेंगे यह मुर्दे का काम!'

और तभी दुरनाचारज ने फेंका ताम खड़ाम
बाल-बाल बचकर मैंने उसको ललकारा था–
'मास्टर साहब, क्लास नहीं, यह नाटक का इस्टेज
यहां मरा सैनिक भी उठ तलवार चला सकता है!

असल शिष्य से गुरु को अबतक पाला नहीं पढ़ा था
याद तुम्हें होगा ही आखिर 'पट्टा-छेप' हुआ था.'

खूब याद है, मैं बोला, वह घटना नाटक वाली
लिखकर मैंने ब्राडकास्ट कर पैसे प्राप्त किये हैं
उस दिन अंदर हंसते-हंसते, हम सब थे बेहाल
दर्शक समझ रहे थे लेकिन, देखो किया कमाल
पाट नया कैसा रचकर के हट कर खेल रहा है
भीतर से इसका ज़रूर पाण्डव से मेल रहा है!
मैंने कहा– 'आज भी जी भर कर मन में हंसता हूं
आती है जब याद तुम्हारी, याद बहुत आती है!'
वह बोला– 'चहका नाटक का अब भी लगा हुआ है
जहां कहीं हो रहा डरामा, वहीं दौड़ जाता हूं
लेकिन भाई कहां बात वह, अपना हाय ज़माना!
पाट द्रौपदी का करती है अब तो स्वयं जनाना.'

नाटक से फिर बात दीन-दुनिया की ओर मुड़ी तो
उसके माथे पर छन-भर मायूसी फैल गयी थी
लम्बी सांस छोड़ बोला था, 'सब फांकी है यार
सभी चीज़ में यहां मिलावट खांटी कहीं नहीं है
कुछ भी नहीं पियोर प्यार भी खोटा ही चलता है
गांवों में भी अब बिलायती मुर्गी बोल रही है!'

मैंने पूछा, 'खेती बारी या करते हो धंधा?
वही रजिस्टर कागज़-पत्तर लेकर के झोली में
कहां चले हो यार सनीचर, यह पहले बतलाओ!'

'खेती-बारी कहां कर सका,' वह उदास हो बोला–
'मिडिल फेल हूं, मगर लाज पढुआ की तो रखनी थी
अपना था वह दोस्त पुराना फुटबालर जोगिंदर

नामी ठेकेदार हो गया है अब बड़ा धुरंधर
काम उसी ने दिया, काम क्या बस समझो आराम
सुबह-शाम सब मज़दूरों के ले-लेकर के नाम
भरता हूं हाजिरी वही 'हाजिर बाबू' सुन-सुन कर
इसीलिए सब मुझे हाजिरी बाबू ही कहते हैं.'

भले भाग से मिले दोस्त तो एक अरज करता हूं
सुना सनीमा नाटक थेटर वाले मित्र तुम्हारे
बहुत बने है बम्बई, दिल्ली कलकत्ता में
अगर किसी से कह कर पाट दिला दो...

तभी अचानक गड़गड़ करती गाड़ी पुल पर दौड़ी
'छूट गया कुरसेला टीशन, पीछे ही,' वह चौंका
अच्छा कोई बात नहीं 'थट्टी डाउन' धर लेंगे
ऐन हाजरी के टाइम पर साइट पर पहुंचेंगे
कहा-सुना सब माफ करोगे, लेकिन याद रखोगे
बचपन के सब मित्र तुम्हारे सदा याद करते हैं
गांव छोड़ कर चले गये हो शहर, मगर अब भी तुम
सचमुच गंवई ही हो, सहरी तो नहीं हुए हो!
इससे बढ़कर और भला क्या हो सकती है बात
अब भी मन में बसा हुआ है इन गांवों का प्यार!'

इसके आगे एक शब्द भी नहीं सका था बोल
गला भर गया, दोनों आंखें डब-डब भर आयी थीं
मेरा भी था वही हाल, मुश्किल से बोल सका था
'जल्दी ही आऊंगा फिर' पर आंखें बरस पड़ी थीं।

पद्य नहीं यह, तुकबंदी भी नहीं, किंतु जो भी हो
दर्द नहीं झूठा जो अबतक मन में पाल रहा हूं.

इमर्जेंसी

इस ब्लाक के मुख्य प्रवेश द्वार के सामने
हर मौसम आकर ठिठक जाता है
सड़क के उस पार
चुपचाप दोनों हाथ बगल में दबाये
सांस रोके
खामोश
इमली की शाखों पर हवा

ब्लाक के अंदर
एक ही ऋतु

हर वार्ड में बारहों मास
हर रात रोती काली बिल्ली
हर दिन
प्रयोगशाला से बाहर फेंकी हुई
रक्तरंजित सफेद खरगोश की लाश
ईथर की गंध में ऊंघती ज़िंदगी
रोज़ का यह सवाल, कहिए अब कैसे हैं?
रोज़ का जवाब, ठीक हूं, सिर्फ़ कमज़ोरी,
थोड़ी खांसी और तनिक-सा .... यहां पर मीठा मीठा दर्द!

इमर्जेंसी वार्ड की ट्रालियां
हड़हड़-झड़झड़ करती आपरेशन थियेटर से
निकलती हैं इमर्जेंसी!

सैलाइन और रक्त की
बोतलों में कैद ज़िंदगी!
रोग-मुक्त, किंतु बेहोश काया में
बूंद-बूंद टपकती रहती है– इमर्जेंसी!

सहसा मुख्य द्वार पर ठिठके हुए मौसम
और तमाम चुपचाप हवाएं
एक साथ
मुख और प्रसन्न शुभकामना के स्वर-इमर्जेंसी!

हम ही हैं हिंदू और मुसलमान

● अजय ब्रह्मात्मज

मेरा नाम अजय ब्रह्मात्मज है. अजय नाम का इतिहास बहुत पुराना नहीं है. यह आधुनिक और सेक्यूलर नाम है. ब्रह्मात्मज नाम से जन्म से मिली मेरी जाति का संकेत नहीं मिलता. यह सरनेम मेरे पिता सुखदेव नारायण ने दिया. परम्परा के हिसाब से मेरा नाम अजय नारायण होना चाहिए था, लेकिन मेरे पिता निश्चित रूप से अपने समकालीनों से ज़्यादा आधुनिक और प्रगतिशील रहे और हैं कि उन्होंने हम सभी भाइयों के नाम में मां का नाम ब्रह्मा जोड़ा. ब्रह्मात्मज यानी ब्रह्मा और आत्म और ज यानी ब्रह्मा की आत्मा से पैदा हुआ यानी उसका बेटा–इस तरह हम सभी अपनी मां के बेटे हो गये. प्रसंगवश पिताजी ने मेरी बहन के सरनेम में अपने नाम का एक अंश जोड़कर उसका नाम सुनीता देवात्माजा रखा था.

अजय ब्रह्मात्मज नाम बताते ही स्पष्ट हो जाता है कि मैं हिंदू परिवार का सदस्य हूं. मेरी पृष्ठभूमि हिंदुओं की है. मुझे हिंदू कहलाने से कोई परहेज़ नहीं है. लेकिन क्या मैं वही हिंदू हूं, जो हमेशा मुसलमानों के विरोध में माने जाते हैं. सच कहूं तो मेरी कोई धार्मिक और आध्यात्मिक आस्था नहीं है. मेरी मां हिंदू परिवारों में प्रचलित सारे व्रत करती रही, लेकिन उसने कभी बाध्य नहीं किया कि हम बेटे उन व्रतों के उपवास या पूजा इत्यादि में शामिल हों. अब वह लगभग सारे व्रत छोड़ चुकी हैं. कारण पूछने पर वह कहती हैं अब क्या

ज़रूरत है मुझे मेरे सारे बच्चे सुखी-सम्पन्न हैं. मिडिल स्कूल के समय से ही धार्मिकता और पूजा-पाठ से मेरी विरक्ति हो गयी. पारिवारिक पृष्ठभूमि से हिंदू होने के नाते मैं मंदिरों में परिजनों के साथ जाता हूं. प्रतिमाओं के आगे हाथ भी जोड़ता हूं, लेकिन उन प्रतिमाओं के प्रति कोई श्रद्धा या पूजनीय भाव नहीं महसूस करता. शायद ऐसे व्यक्ति को नास्तिक कहते हैं और हिंदू परम्परा में ऐसे व्यक्तियों के लिए भी जगह है. इसी कारण न तो मुझे हिंदू धर्म से निष्कासित करने की ज़रूरत समझी गयी और न मुझ पर दबाव डाला गया कि खुद को हिंदू सत्यापित करने के लिए मैं झूठे धार्मिक आडम्बर और आचरण ओढ़ लूं.

बहरहाल, बिहार से निकलकर पढ़ने के लिए दिल्ली आया. दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में नामांकन लेने के बाद नर्मदा हॉस्टल में कमरा नम्बर '511' मिला. इस कमरे में हम तीन यानी मैं, खुर्शीद अनवर और मिथिलेश पाठक थे. कुछ कारणों से मिथिलेश पंद्रह दिनों से ज़्यादा उस कमरे में नहीं टिक सके. बाद में हम दोनों (खुर्शीद और मैं) रह गये. खुर्शीद अनवर इलाहाबाद से आया था. मुझे नहीं लगता कि अल्लाह में उसकी कोई आस्था थी. हां, कभी-कभी अम्मीजान की याद आ जाती तो कान पकड़कर दो-चार बार तौबा करता और फिर माफी मांग लेता. एक सुबह न जाने उसे क्या सूझी, हो सकता है वह अल्लाह के अस्तित्व को लेकर परेशान रहा हो, उसने सुबह-सुबह पूछा अजय तू यार अपने देवी-देवता को नहीं मानता, मैं भी अल्लाह के सजदे में नहीं रहता, लेकिन अगर कहीं देवी-देवता और अल्लाह हुए तो हमारा क्या होगा? मरने के बाद तेरी दुर्गति होगी और कयामत के रोज़ मैं क्या जवाब दूंगा. सवाल पूछने के बाद वह कुछ देर तक सोचता रहा और फिर जैसे सब कुछ झाड़कर बिस्तर से उठ खड़ा हुआ. रहें खुदा अपनी जगह. कैंपस में ही उसने एक कथित हिंदू लड़की से शादी कर ली. उसने अपने बेटे का नाम समर रखा है.

क्या खुर्शीद अनवर मुसलमान है?

खुर्शीद से मेरी दोस्ती आज भी बरकरार है. बस वह दिल्ली में रहता है और मैं मुंबई में. कभी-कभार वह फोन कर लेता है और मैं भी हाल-चाल पूछता रहता हूं. खुर्शीद से हुई मुलाकात के पहले दो कथित मुसलमानों से मेरा परिचय रहा. एक तो मेरे पिताजी के कार्यालय में चपरासी थे. चारखाने की लुंगी, बांह वाली गंजी, पैरों में हवाई चप्पल, गंजा सिर और घनी दाढ़ी. सेना की नौकरी से रिटायर होने के बाद वह आये थे, इसलिए नियम-कानून सख्ती से पालन करते थे. सबसे पहले उन्हें करीब से देखने का मौका

मिला. वह हमारी तरह दातुन करने के बाद उसका चीरा कर जीभ साफ नहीं करते थे. वह दातुन फेंकते भी नहीं थे. हमें हैरत होती थी. हम उनका दातुन चोरी से फेंक देते थे तो हमें उनकी डपट सुननी पड़ती थी. मां ने उनके लिए एक कप अलग रखा था. उसी में उन्हें चाय मिलती थी. सिर्फ़ उनके लिए ही नहीं, बाकी मुसलमान मेहमानों के लिए भी ऐसी ही व्यवस्था थी. अलग ग्लास, अलग बर्तन और थोड़ा अलग आचरण. वहीं एक मास्टर थे सईद मियां. सफ़ेद धोती और सफ़ेद कमीज़ पहनते थे. मालूम नहीं अभी हैं या नहीं? पिताजी से उनकी निभती थी. वह ऑफिस के काम में भी पिताजी की मदद करते थे. करीबी होने के कारण ईद के दिन उनके यहां से बुलाहट रहती थी. वह मास्टर बन गये थे, लेकिन उनके पिता चिक (कसाई) थे और उनके छोटे भाई दर्ज़ी थे. सईद मियां के परिवार से हमारे परिवार का रिश्ता इतना था कि हर हफ्ते उनके पिताजी मांस भेजा करते थे और हमारे कपड़े उनके भाई सिलने लगे थे. ईद के दिन हमारा पूरा परिवार उनके यहां खाने पर जाता था. मां नहीं जाती थी. मां के लिए सईद मियां सेवइयां हमारे साथ भेजा करते थे. हम लोग जब तक बिहार के उस कस्बे में अरेराज में रहे, तब तक सईद मियां हमारे परिवार के अतिरिक्त सदस्य के रूप में रहे. हर वक्त-ज़रूरत पर मौजूद और मदद के लिए तैयार. वह धार्मिक आस्था के व्यक्ति थे. नमाज़ पढ़ते थे और नियम से सभी त्योहारों का पालन करते थे. मैं उनके साथ ताज़िया के जुलूस में शामिल हो चुका था. एक बार उन्हीं के साथ मस्जिद भी गया था. क्या उनके दिमाग में उस समय यह बात नहीं आयी होगी कि क्यों वह एक हिंदू को मस्जिद में ले जा रहे हैं. कस्बे में तो मौलवी भी जानते थे कि मैं किस परिवार से हूं, लेकिन उन्हें भी कोई गुरेज नहीं हुआ था.

सईद मियां के परिवार में मेरा आना-जाना था. उनके आंगन और घर के कमरों में भी हम चले जाते थे. उनकी बीवी, मां और बहनों के साथ बेहिचक बातें करते थे. उनके व्यवहार से कभी ऐसा आभास नहीं हुआ कि वे किसी दबाव में हमारे साथ सामान्य रहती हैं. झिझक और विवशता छिपी नहीं रह सकती. वह बात-व्यवहार में आ ही जाती है. और फिर चीन का प्रवास, इस प्रवास में कई मुसलमान दोस्त बने. कुछ कट्टर और खांटी मुसलमान तो कुछ उदार और अपने मज़हब को गाली देने वाले मुसलमान एक रहमान साहब थे. पाकिस्तान के करांची शहर के सिगरेट, शराब और संगत के शौकीन. उनकी सबसे प्रिय गायिका लता मंगेशकर थीं. उन्होंने मेरे कमरे में एक बार शारदा सिन्हा (बिहार की लोक गायिका) को सुन

लिया तो उनके नाम एक खत मेरे हाथों भिजवाया. उनके पिता भारत से माइग्रेट कर गये थे, लेकिन केवल उनका शरीर पाकिस्तान गया था, दिल भारत में ही छूट गया था. रहमान साहब भी बचपन की धुंधली यादों से गांव का नक्शा बनाते थे और पुरबिया बोली में दो-चार गालियां सुना देते थे. मशहूर थ्येनआन मन घटना के समय भारत से गये तीन विख्यात लेखकों को मैं घुमाने कहीं ले गया था, तभी ‘4 जून’ की घटना घट गयी थी. शहर में अचानक कर्फ्यू का माहौल बन गया था. सारी सवारियां बंद हो गयीं थीं, तब उस पाकिस्तानी मुसलमान रहमान ने अपनी कार में मृणाल पांडे, विजय तेंदुलकर और अनंतमूर्ति को बिठाकर उनके होटल छोड़ा था. एक पाकिस्तानी मुसलमान ने चंद भारतीय लेखकों (तीनों कथित हिंदू) के लिए क्यों जोखिम उठाया? असमंजस में हूं क्या रहमान सिर्फ़ मुसलमान थे. सालों बाद अब मेरी बेटियां बड़ी हो रही हैं. बड़ी बेटी के दोस्तों में कई मुसलमान लड़के हैं. उसका अंतरंग दोस्त अली है. उसे हम सभी अच्छी तरह जानते हैं. मेरी मां भी उससे मिल चुकी है. मेरी मां ने, पत्नी ने या मैंने उसके मुसलमान होने पर अलग से गौर ही नहीं किया. क्या वह सचमुच मुसलमान यानी हिंदुओं के जाती दुश्मन, तो फिर उसकी कैसे दोस्ती हो गयी मेरी बेटी से? क्या वह मुसलमान नहीं है या फिर वह भी हमारी तरह असमंजस में हैं. हिंदू और मुसलमान दो पहचान हैं या एक ही सिक्के के दो पहलू हैं. मुझे लगता है पृष्ठभूमि और परिवार से मिली पहचान से हम हिंदू या मुसलमान हैं, लेकिन हम में से अधिकांश वैसे हिंदू या मुसलमान नहीं हैं, जो एक-दूसरे की तबाही चाहते हैं. नाहक हम शक के घेरे में आ गये हैं या कुछ स्वार्थी ताकतें हमें एक-दूसरे के खिलाफ़ तोप की तरह इस्तेमाल करना चाहती हैं.

वे अपने मकसद में कामयाब नहीं होंगे, क्योंकि सईद मियां पिताजी के दोस्त रहे हैं. मेरा दोस्त खुर्शीद अनवर है, जो अपनी मसरूफ़ियत में भी मेरी बीमारी की खबर सुनकर सहम जाता है और मेरी बेटी का दोस्त अली है. हम सभी आज़ाद भारत के विभिन्न दौरों में हमकदम आगे बढ़ते रहे हैं. गुजर जायेगा शक-ओ-सुबहा का यह वक्त, क्योंकि ज़िंदगी लम्बी है और चलती रहती है, नफ़रत तो एक पल का नाम है क्षणिक घटना है, नकारात्मक भावनाओं का उद्रेक है. ❑

सिटीजन फॉर पीस और इंडियन एक्सप्रेस द्वारा आयोजित द्वितीय वार्षिक निबंध प्रतियोगिता, ‘2006’ में अजय ब्रह्मात्मज के ‘हम ही हैं हिंदू और मुसलमान’ शीर्षक निबंध को हिंदी श्रेणी में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया. निबंध का विषय था– ‘हम जैसे नहीं : नागरिकों की दुविधा.’

एक अव्यक्त निवेदन

● डॉ. धर्मवीर भारती

धूप उस थली की खास न्यामत थी. शायद इसलिए कि अतरसुइया की वह गली जहां मैं रहता था, बहुत पतली थी. एक-दूसरे पर झुके हुए ऊंचे-नीचे मकानों, कच्ची-पक्की कीचड़दार नालियों और दो तीन नीम, गोंदी और सहजन के पेड़ों के कारण अक्सर सीलन रहती थी. इसीलिए बैसाख और जेठ में जब धूप बेहद नृशंस हो उठती थी, छोटे-छोटे आंगन अंगीठी की तरह धधक उठते थे, तब भी धूप और लू की चाहत बनी रहती थी. आज तक बनी है और याद आती है.

* * *

गुलकी बन्नो के लेखन-काल की याद करता हूं तो सबसे पहले ध्यान में आती है वही उतरते बैसाख चढ़ते जेठ की धूप; बाकी सब बाद में. झुलसाने वाली धूप हुआ करती थी और उसमें कई महकें मिल गयी थीं : आंगन की गीली दीवारों के सूखने की महक, नल के नीचे प्यासी गौरैया के हांफने की महक और बाहर से आती नीम के फूलों की महक. उन्हीं दिनों चटाई पर बैठकर, माथे पर गीला तौलिया लपेट कर दोपहर में यह कहानी लिखा करता था क्योंकि दोपहर को किसी यार-दोस्त के आने का खतरा नहीं था, यहां तक कि स्मरण मात्र से अवतरित होने वाले सर्वव्यापी मुंशी लक्ष्मीकांत वर्मा का भी नहीं!

* * *

यह 1955 की गर्मियों की बात है. अब यह याद नहीं रहा कि किन परिस्थितियों में और क्यों यह कहानी लिखने की बात दिमाग में आयी थी, पर इतना याद है कि अकस्मात जैसे एक जुनून सवार हो गया था कि यह कहानी लिख नहीं डालूंगा तो मन पर एक भयानक बोझा बना रहेगा. सारा काम-धाम छोड़कर इसी में लग गया था और तीन-चार दिन में कहानी पूरी हो गयी थी. बाद में अनेक बार इस कहानी के कुछ पात्रों, कुछ स्थितियों और चित्रणों को लेकर अनेक सवाल उठे और उनमें से अनेक का गलत या सही जवाब देने की कोशिश भी मैंने की, लेकिन उस समय यह सब कुछ योजनाबद्ध सोचा नहीं था. शायद बरसों से अपनी गली-मुहल्ले की कितनी घटनाएं, स्थितियां, लोग, समस्याएं

अवचेतन मन में बस गयी होंगी, उनका पास्परिक घात-प्रतिघात चलता रहा होगा और वह सब एक दिन फूट पड़ा.

इतना ज़रूर है कि मैंने अपने गली-मुहल्ले को जी-जान से प्यार किया है– उसके एक-एक व्यक्ति को, एक-एक घर को, उसकी सारी मानवीय जटिलता को. उसके अपने अनोखेपन को. हमारे मुहल्ले में सब कुछ सारी दुनिया से अलग था. कौन नहीं था वहां? रईस थे, पण्डे थे, बाबू लोग थे, कांग्रेसी थे, क्रांतिकारी थे, टोडी बच्चे थे, खुफिया पुलिस वाले थे, मास्टर-मुदर्रिस थे, बच्चे थे, कम्युनिस्ट थे, कुबड़ी गुलकी थी, घेघा बुआ थी, मुन्ना बाबू थे, मिखा था, सन्नी थी, हकीमजी थे, अम्मा थी, मैं था... मगर ये सब बाहरी संज्ञाएं थीं. ज़रा-सा खरोंच कर देखिए, वही मुहल्ले की मिट्टी थी. आज भी है. उसके अलावा कुछ हो ही नहीं सकता. मैं अब इलाहाबाद का नहीं हूं, पर अपने गली-मुहल्ले का अब भी हूं– अपने अंतर के अंतरतम तक में.

मगर एक कचोट अंदर ही अंदर सालने लगी थी मुझे. कुछ नाम हो गया था, दो-चार किताबें छप गयी थीं, डाक्टर की डिग्री मिल गयी थी, नौकरी लग गयी थी यूनिवर्सिटी में, जो तब आई.सी.एस. से ज़्यादा स्वाभिमान की चीज़ मानी जाती थी, पर एक अनजानी दरार पड़ने लगी थी. मैं अक्सर अपनी साइकिल लिये गली में आता था तो सबसे दुआ-सलाम होती थी. लेकिन गली-मुहल्ले की निगाह में एक भाव कभी-कभी झलकता था, 'भैया अब तुम्हार पंख हियां थोड़ै समाई, कब उड़ जाओ कौन ठिकाना, जहां रहौ खुश रहौ!' ...और बस गली-मुहल्ले की आंखों में यह भाव मुझे अंदर ही अंदर तोड़ देता था. मैं वही हूं, वही... इसी मुहल्ले की मुट्ठी भर मिट्टी और अंजुरी भर धूप...और कुछ नहीं... बाकी सब यूं ही है. मैं तुम्हें कैसे बताऊं?

• • •

यह कहानी उन्हीं दिनों लिखी गयी थी और आज सोचता हूं कि क्या इसे लिखकर मैंने उन सबसे यही अव्यक्त निवेदन किया था?

लेकिन फिर गुलकी बन्नो जैसा पात्र ही क्यों चुना... कुरूपता, सौजन्य, बेबसी और कोमलता का अजीब समिश्रण और सबके ऊपर... बन्नो विशेषण का व्यंग्य?

बात यह है कि मेरी गली की ज़िंदगी सचमुच ऐसी ही थी. सब कुछ न केवल अनोखा था, बल्कि बेहद जीवंत, बहुत तल्ख, और कहीं बहुत सुकोमल; छोटी-छोटी धूर्तताएं, झूठ, कुटिलताएं, स्वार्थ, ये सब भी थे. मगर सबके बाद कहीं एक बड़ी गहरी, बड़ी भद्र, बड़ी समझदारी भरी इंसानियत थी– लेकिन इन सब पर किसी बहुत बड़ी बेबसी की छाया भी थी– खामोश! और उस बेबसी का अहसास

तोड़ देता था अंदर से. सारी गली-मुहल्ले की आंखों में एक ही दृष्टि थी– जिसे सिर्फ एक कवि समझ सकता था– निराला, जिसने कहीं ऐसी ही किसी स्थिति के लिए लिखा था– 'दृष्टि वह जो मार खा रोई नहीं!'

उस गली में ज़िंदगी मार खाकर छटपटा उठती थी, रो भी नहीं पाती थी, बल्कि कुबड़ी गुलकी को 'बन्नो' विशेषण देकर मुस्काने की कोशिश करती थी, उसे सौत की सेवा के लिए क्रूर पति के साथ सुहागिन का आशीष देकर विदा भी कर आती थी, फिर आंखें पोंछकर उसके मकान के सौदे का हिस्सा बांट करने में लग जाती थी.

• • •

और इसीलिए जब सौंदर्यवादी दृष्टि से, मार्क्सवादी दृष्टि से, कहानी कला की दृष्टि से, या अनेकानेक समीक्षा दृष्टियों से मुझसे कोई पूछता है कि गुलकी ने यह क्यों किया, वह क्यों नहीं किया, बच्चे ऐसे क्यों करते हैं, वैसे क्यों नहीं करते थे, तो मैं चुप रह जाता हूं– वैसे कहूं कि ये सब दृष्टियां अपनी जगह सच होंगी, किंतु मैं क्या करूं? मेरी गली की आंखों में तो वही दृष्टि जिसे निराला ने तो कितने कम शब्दों में कह दिया है, पर मुझे वह कितनी कहानियों में कहनी पड़ेगी.

• • •

मैं कितने साल बाद पिछले चैत में अपनी गली में गया था. सूनी गली की आंखों में वह भाव और गहरा आया है. थोड़ी देर खामोश इधर-उधर घूम कर मन पर और ज़्यादा बोझ लेकर लौट आया था... अभी तो उसकी कितनी कहानी बाकी है! ❑

साहित्य और सत्य

सच्चाई वर्ग पर आधारित नहीं होती. वर्ग का हो या न हो, मनोविकार ग्रस्त हो या न हो, वह चीज़ आपको सच लगती है या नहीं, इससे आगे आपका कविता का या साहित्य का सत्य नहीं होता. उसी में– उसी एक रचना में– वह कसौटी होती है. हम जानते हैं कि सभी पात्र कल्पित हैं, फिर हम सच की खोज क्यों करते हैं. जो क्रियाकलाप उपन्यास में है, या कविता में है, उसी को हम कसौटी बनाते हैं. दूसरे प्रश्न भी हो सकते हैं किंतु वे सच्चाई के काम के नहीं. यह भी प्रश्न हो सकता है कि दूसरे सत्यों के प्रति कवि की क्या दृष्टि है. छोटे क्षेत्र का सच है इस कारण वह अमान्य हो गया है, इस निर्णय पर पहुंचने का आलोचक को अधिकार नहीं है.

– अज्ञेय

जयंती-स्मरण

गुलकी बन्नो

● धर्मवीर भारती

'ऐ मर कलमुंहे!' अकस्मात् घेघा बुआ ने कूड़ा फेंकने के लिए दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठे मिरवा को गाते हुए देखकर कहा, 'तोरे पेट में फोनोगिराफ उलियान बा का, जौन भिनसार भवा कि तान तोड़ै लाग? राम जानै, रात के कैसन एकरा दीदा लागत है!' मारे डर के कि कहीं घेघा बुआ सारा कूड़ा उसी के सर पर न फेक दें, मिरवा थोड़ा खिसक गया और ज्यों ही घेघा बुआ अन्दर गयीं कि फिर चौतरे की सीढ़ी पर बैठ, पैर झुलाते हुए उसने उल्टा-सुल्टा गाना शुरू कर किया, 'तुमें बछ याद कलते अम छनम तेरी कछम!' मिरवा की आवाज़ सुनकर जाने कहां से झबरी कुतिया भी कान-पूंछ झटकारते आ गयी और नीचे सड़क पर बैठकर मिरवा का गाना बिल्कुल उसी अन्दाज़ में सुनने लगी जैसे हिज़ मास्टर्स वॉयस के रिकार्ड पर तस्वीर बनी होती है.

अभी सारी गली में सन्नाटा था. सबसे पहले मिरवा (असली नाम मिहिरलाल) जागता था और आंख मलते-मलते घेघा बुआ के चौतरे पर आ बैठता था. उसके बाद झबरी कुतिया, फिर मिरवा की छोटी बहन मटकी और उसके बाद एक-एक कर गली के तमाम बच्चे-खोंचेवाली का लड़का मेवा, ड्राइवर साहब की लड़की निरमल, मनीजर साहब के मुन्ना बाबू–सभी आ जुटते थे. जबसे गुलकी ने घेघा बुआ के चौतरे पर तरकारियों की दुकान रखी थी तब से यह जमावड़ा वहां होने लगा था. उसके पहले बच्चे हकीमजी के चौतरे पर खेलते थे. धूप निकलते गुलकी सट्टी से तरकारियां खरीदकर अपनी कुबड़ी पीठ पर लादे, डण्डा टेकती आती और अपनी दुकान फैला देती. मूली, नीबू, कद्दू, लौकी, घिया-बण्डा, कभी-कभी सस्ते फल! मिरवा और मटकी जानकी उस्ताद के बच्चे थे जो एक भंयकर रोग में गल-गलकर मरे थे और दोनों बच्चे भी विकलांग, विक्षिप्त और रोगग्रस्त पैदा हुए थे. सिवा झबरी कुतिया के और कोई उनके पास नहीं बैठता था और सिवा गुलकी के कोई उन्हें अपनी देहरी या दुकान पर चढ़ने नहीं देता था.

आज भी गुलकी को आते देखकर पहले मिरवा गाना छोड़कर, 'छलाम गुलकी!' और मटकी अपने बढ़ी हुई तिल्लीवाले पेट पर से खिसकता हुआ जांघिया संभालते

हुए बोली, 'एक ठो मूली दै देव! ए गुलकी!' गुलकी पता नहीं किस बात से खीझी हुई थी कि उसने मटकी को झिड़क दिया और अपनी दुकान लगाने लगी. झबरी भी पास गयी कि गुलकी ने डण्ड उठाया. दुकान लगाकर वह अपनी कुबड़ी पीठ दुहराकर बैठ गयी और जाने किसे बुड़बुड़ाकर गालियां देने लगी. मटकी एक क्षण चुपचाप रही फिर उसने रट लगाना शुरू किया, 'एक मूली! एक गुलकी!' गुलकी ने फिर झिड़का तो चुप हो गयी और अलग हटकर लोलुप नेत्रों से सफेद धुली हुई मूलियों को देखने लगी. इस बार वह बोली नहीं. चुपचाप उन मूलियों की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि गुलकी चीखी, 'हाथ हटाओ. छूना मत. कोढ़िन कहीं की! कहीं खाने-पीने की चीज देखी तो जोंक की तरह चिपक गयी, चल इधर!'

मटकी पहले तो पीछे हटी पर फिर उसकी तृष्णा ऐसी अदम्य हो गयी कि उसने हाथ बढ़ाकर एक मूली खींच ली. गुलकी का मुंह तमतमा उठा और उसने बांस की खपच्ची उठाकर उसके हाथ पर चट से दे मारी! मूली नीचे गिरी और हाय! हाय! हाय!' कर दोनों हाथ झटकती हुई मटकी पांव पटक-पटक कर रोने लगी. 'जावो अपने घर रोवो. हमारी दुकान पर मरने को गली-भर के बच्चे हैं-' गुलकी चीखी! 'दुकान दैके हम बिपता मोल लै लिया. छन-भर पूजा-भजन में भी कचरघांव मची रहती है!' अन्दर से घेघा बुआ ने स्वर मिलाया. ख़ासा हंगामा मच गया कि इतने में झबरी भी खड़ी हो गयी और लगी उदात्त स्वर में भूंकने. 'लेफ्ट राइट! लेफ्ट राइट!' चौराहे पर तीन-चार बच्चों का जूलूस चला आ रहा था. आगे-आगे दर्जा 'ब' में पढ़नेवाले मुन्ना बाबू नीम की सण्टी को झण्डे की तरह थामे जलूस का नेतृत्व कर रहे थे, पीछे थे मेवा और निरमल. जलूस आकर दूकान के सामने रुक गया. गुलकी सतर्क हो गयी. दुश्मन की ताक़त बढ़ गयी थी.

मटकी खिसकते-खिसकते बोली, 'हमके गुलकी मारिस है. हाय! हाय! हमके नरिया में ढकेल दिहिस. अरे बाप रे!' निरमल, मेवा, मुन्ना, सब पास आकर उसकी चोट देखने लगे. फिर मुन्ना ने ढकेलकर सबको पीछे हटा दिया और सण्टी लेकर तनकर खड़े हो गये. 'किसने मारा है इसे!'

'हम मारा है!' कुबड़ी गुलकी ने बड़े कष्ट से खड़े होकर कहा, 'का करोगे? हमें मारोगे!' मारोगे!' मारेंगे क्यों नहीं?' मुन्ना बाबू ने अकड़कर कहा. गुलकी इसका कुछ जवाब देती कि बच्चे पास घिर आये. मटकी ने जीभ निकालकर मुंह बिराया, मेवा ने पीछे जाकर कहा, 'ए कुबड़ी, ए कुबड़ी, अपना कूबड़ दिखाओ!' और एक मुट्ठी धूल उसकी पीठ पर छोड़कर भागा. गुलकी का मुंह तमतमा आया और रुंधे

गले से कराहते हुए उसने पता नहीं क्या कहा. किंतु उसके चेहरे पर भय की छाया बहुत गहरी हो रही थी. बच्चे सब एक-एक मुट्ठी धूल लेकर शोर मचाते हुए दौड़े कि अकस्मात् घेघा बुआ का स्वर सुनाई पड़ा, 'ए मुन्ना बाबू, जात हौ कि अबहिन बहिनजी का बुलवाय के दुई-चार कनेठी दिलवायी!' 'जाते तो हैं!' मुन्ना ने अकड़ते हुए कहा, 'ए मिरवा, बिगुल बजाओ.' मिरवा ने दोनों हाथ मुंह पर रखकर कहा, 'धुतु-धुतु-धू.' जलूस आगे चल पड़ा और कप्तान ने नारा लगाया–

अपने देस में अपना राज!
गुलकी की दुकान बाईकाट!

नारा लगाते हुए जलूस गली में मुड़ गया. कुबड़ी ने आंसू पोंछे, तरकारी पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी के छींटे देने लगी.

गुलकी की उम्र ज़्यादा नहीं थी. यही हद-से-हद पच्चीस-छब्बीस. पर चेहरे पर झुर्रियां आने लगी थीं और कमर के पास से वह इस तरह दोहरी हो गयी थी जैसे अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो. बच्चों ने जब पहली बार उसे मुहल्ले में देखा तो उन्हें ताज्जुब भी हुआ और थोड़ा भय भी. कहां से आयी? कैसे आ गयी? पहले कहां थी? इसका उन्हें कुछ अनुमान नहीं था. निरमल ने ज़रूर अपनी मां को उसके पिता ड्राइवर से रात को कहते हुए सुना, 'यह मुसीबत और खड़ी हो गयी. मरद ने निकाल दिया तो हम थोड़े ही यह ढोल गले बांधेंगे. बाप अलग हम लोगों का रुपया खा गया. सुना चल बसा तो डरी कि कहीं मकान हम लोग न दखल कर लें और मरद को छोड़कर चली आयी. खबरदार जो चाभी दी तुमने!' 'क्या छोटेपन की बात करती हो! रुपया उसके बाप ने ले लिया तो क्या हम उसका मकान मार लेंगे? चाभी हमने दे दी है. दस-पांच दिन का नाज-पानी भेज दो उसके यहां.'

'हां-हां, सारा घर उठा के भेज देव. सुन रही हो घेघा बुआ!'

'तो का भवा बहू, अरे निरमल के बाबू से तो एकरे बाप की दांत काटी रही.' घेघा बुआ की आवाज़ आयी-'बेचारी बाप की अकेली संतान रही. एही के बियाह में मटियामेट हुई गवा. पर ऐसे कसाई के हाथ में दिहिस की पांचै बरस में कूबड़ निकल आवा.'

'साला यहां आवे तो हण्टर से खबर लूं मैं.' ड्राइवर साहब बोले, 'पांच बरस बाद बाल-बच्चा हुआ. अब मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ तो उसमें इसका क्या कसूर! साले ने सीढ़ी से ढकेल दिया. ज़िंदगी-भर के लिए हड्डी खराब हो गयी न! अब कैसे गुजारा हो उसका?'

'बेटवा एको दुकान खुलवाय देव. हमरा चौतरा खाली पड़ा है. यही रुपया दुइ रुपया किराया दै देवा करै, दिन-भर अपना सौदा लगाय ले. हम का मना करित

है? एत्ता बड़ा चौतरा मुहल्लेवालन के काम न आयी तो का हम छाती पर धै लै जाब! पर हां, मुला रुपया दै देव करै.'

दूसरे दिन यह सनसनीखेज खबर बच्चों में फैल गयी. वैसे तो हकीमजी का चबूतरा पड़ा था, पर वह कच्चा था, उस पर छाजन नहीं थी. बुआ का चौतरा लम्बा था, उस पर पत्थर जुड़े थे. लकड़ी के खम्भे थे. उस पर टीन छायी थी. कई खेलों की सुविधा थी. खम्भों के पीछे किल-किल कांटे की लकीरें खींची जा सकती थीं. एक टांग से उचक-उचककर बच्चे चिबिड्डी खेल सकते थे. पत्थर पर लकड़ी का पीढ़ा रखकर नीचे से मुड़ा हुआ तार घुमाकर रेलगाड़ी चला सकते थे. जब गुलकी ने अपनी दुकान के लिए चबूतरों के खम्भों में बांस-बांधे तो बच्चों को लगा कि उनके साम्राज्य में किसी अज्ञात शत्रु ने आकर किलेबंदी कर ली है. वे सहमे हुए दूर से कुबड़ी गुलकी को देखा करते थे. निरमल ही उसकी एकमात्र संवाददाता थी और निरमल का एकमात्र विश्वस्त सूत्र था उसकी मां. उससे जो सुना था उसके आधार पर निरमल ने सबको बताया था कि यह चोर है. इसका बाप सौ रुपया चुराकर भाग गया. यह भी उसके घर का सारा रुपया चुराने आयी है. 'रुपया चुरायेगी तो यह भी मर जाएगी.' मुन्ना ने कहा, 'भगवान सबको दण्ड देता है.' निरमल बोली 'ससुराल में भी रुपया चुराये होगी.' मेवा बोला 'अरे कूबड़ थोड़े है! ओही रुपया बांधे है पीठ पर. मनसेधू का रुपया है.' 'सचमुच?' निरमल ने अविश्वास से कहा. 'और नहीं क्या कूबड़ थोड़ी है. है तो दिखावै.' मुन्ना द्वारा उत्साहित होकर मेवा पूछने ही जा रहा था कि देखा साबुनवाली सत्ती खड़ी बात कर रही है. गुलकी से कह रही थी, 'अच्छा किया तुमने! मेहनत से दुकान करो. अब कभी थूकने भी न जाना उसके यहां. हरामजादा, दूसरी औरत कर ले, चाहे दस और कर ले. सबका खून उसी के मत्थे चढ़ेगा. यहां कभी आवे तो कहलाना मुझसे. इसी चाकू से दोनों आंखें निकाल लूंगी!'

बच्चे डरकर पीछे हट गये. चलते-चलते सत्ती बोली, 'कभी रूपये-पैसे की जरूरत हो तो बताना बहिना!'

कुछ दिन बच्चे डरे रहे. पर अकस्मात् उन्हें यह सूझा कि सत्ती को यह कुबड़ी डराने के लिए बुलाती है. इसने उसके गुस्से में आग में घी का काम किया. पर कर क्या सकते थे. अंत में उन्होंने एक तरीका ईजाद किया. वे एक बुढ़िया का खेल खेलते थे. उसको उन्होंने संशोधित किया. मटकी को लैमन जूस देने का लालच देकर कुबड़ी बनाया गया. वह उसी तरह पीठ दोहरी करके चलने लगी. बच्चों ने सवाल जवाब शुरू किये:

'कुबड़ी-कुबड़ी का हेराना?'

'सुई हिरानी.'

‘सुई लैके का करबे’
‘कंथा सीबै! ’
‘कंथा सी के का करबे?’
‘लकड़ी लाबै!’
‘लकड़ी लाय के का करबे?’
‘भात पकइबे! ’
‘भात पकाये के का करबै?’
‘भात खाबै!’
‘भात के बदले लात खाबै.’

और इसके पहले कि कुबड़ी बनी हुई मटकी कुछ कह सके, वे उसे जोर से लात मारते और मटकी मुंह के बल गिर पड़ती, उसकी कोहनिया और घुटने छिल जाते, आंख में आंसू आ जाते और ओठ दबाकर वह रुलाई रोकती. बच्चे खुशी से चिल्लाते, ‘मार डाला कुबड़ी को. मार डाला कुबड़ी को.’ गुलकी यह सब देखती और मुंह फेर लेती.

एक दिन जब इसी प्रकार मटकी को कुबड़ी बनाकर गुलकी की दुकान के सामने ले गये तो इसके पहले कि मटकी जबाव दे, उन्होंने अनचिते में इतनी ज़ोर से ढकेल दिया कि वह कुहनी भी न टेक सकी और सीधे मुंह के बल गिरी. नाक, होंठ और भौंह ख़ून से लथपथ हो गये. वह ‘हाय! हाय!’ कर इस बुरी तरह चीख़ी कि लड़के कुबड़ी मर गयी चिल्लाते हुए सहम गये और हतप्रभ हो गये. अकस्मात् उन्होंने देखा की गुलकी उठी. वे जान छोड़ भागे. पर गुलकी उठकर आयी, मटकी को गोद में लेकर पानी से उसका मुंह धोने लगी और धोती से खून पोंछने लगी. बच्चों ने पता नहीं क्या समझा कि वह मटकी को मार रही है, या क्या कर रही है कि वे अकस्मात् उस पर टूट पड़े. गुलकी की चीख़े सुनकर मुहल्ले के लोग आये तो उन्होंने देखा कि गुलकी के बाल बिखरे हैं और दांत से ख़ून बह रहा है, अधउघारी चबूतरे से नीचे पड़ी है, और सारी तरकारी सड़क पर बिखरी है. घेघा बुआ ने उसे उठाया, धोती ठीक की और बिगड़कर बोलीं, ‘औकात रत्ती-भर नै, और तेहा पौवा-भर. आपन बखत देख कर चुप नै रहा जात. काहे लड़कन के मुंह लगत हो?’ लोगों ने पूछा तो कुछ नहीं बोली. जैसे उसे पाला मार गया हो. उसने चुपचाप अपनी दुकान ठीक की और दांत से खून पोंछा, कुल्ला किया और बैठ गयी.

उसके बाद अपने उस कृत्य से बच्चे जैसे खुद सहम गये थे. बहुत दिन तक वे शांत रहे. आज जब मेवा ने उसकी पीठ पर धूल फेंकी तो जैसे उसे खून चढ़ गया पर फिर न जाने वह क्या सोचकर चुप रह गयी और जब नारा लगाते जूलूस गली में मुड़ गया तो उसने आंसू पोंछे, पीठ पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी छिड़कने लगी. लड़के का हैं गल्ली के राक्षस हैं!’ घेघा बुआ बोलीं. ‘अरे उन्हें काहै कहो बुआ! हमारा भाग ही खोटा है!’ गुलकी ने गहरी सांस लेकर कहा.

इस बार जो झड़ी लगी तो पांच दिन तक लगातार सूरज के दर्शन नहीं हुए. बच्चे सब घर में कैद थे और गुलकी कभी दुकान लगाती थी, कभी नहीं, राम-राम करके तीसरे पहर झड़ी बंद हुई. बच्चे हकीमजी के चौतरे पर जमा हो गये. मेवा बिलबोटी बीन लाया था और निरमल ने टपकी हुई निमकौड़ियां बीनकर दुकान लगा ली थी और गुलकी की तरह आवाज़ लगा रही थी, 'ले खीरा, आलू, मूली, घिया, बण्डा!' थोड़ी देर में क़ाफी शिशु-ग्राहक दुकान पर जुट गये. अकस्मात् शोरगुल से चीरता हुआ बुआ के चौतरे से गीत का स्वर उठा. बच्चों ने घूम कर देखा मिरवा और मटकी गुलकी की दुकान पर बैठे हैं. मटकी खीरा खा रही है और मिरवा झबरी का सर अपनी गोद में रखे बिलकुल उसकी आंखों में आंखें डालकर गा रहा है.

तुरंत मेवा गया और पता लगाकर लाया कि गुलकी ने दोनों को एक-एक अधन्ना दिया है, दोनों मिलकर झबरी कुतिया के कीड़े निकाल रहे हैं. चौतरे पर हलचल मच गयी और मुन्ना ने कहा, 'निरमल! मिरवा-मटकी को एक भी निमकौड़ी मत देना. रहें उसी कुबड़ी के पास!' 'हां जी!' निरमल ने आंख चमकाकर गोल मुंह करके कहा, 'हमार अम्मां कहत रहीं उन्हें छुयो न! न साथ खायो, न खेलो. उन्हें बड़ी बुरी बीमारी है. आक थू!' मुन्ना ने उनकी ओर देखकर उबकायी जैसा मुंह बनाकर थूक दिया.

गुलकी बैठी-बैठी सब समझ रही थी और जैसे इस निरर्थक घृणा में उसे कुछ रस-सा आने लगा था. उसने मिरवा से कहा, 'तुम दोनों मिल के गाओ तो एक अधन्ना दें. खूब जोर से!' भाई-बहन दोनों ने गाना शुरू किया– माल कताली मल जाना, पल अकियां किछी न मिलाना, अकस्मात् पटाक से दरवाजा खुला और एक लोटा पानी दोनों के ऊपर फेंकती हुई घेघा बुआ गरजीं, दूर कलमुंहे. अबहिन बितौ-भर के नाहीं ना और पतुरियन के गाना गाबै लगे. न बहन का ख्याल, न बिटिया का. और ए कुबड़ी, हम तुहूं से कहे देइत है कि हम चकलाखाना खोलै के बरे अपना चौतरा नहीं दिया रहा. हुंह! चली हुंआ से मुजरा करावै.'

गुलकी ने पानी उधर छिटकाते हुए कहा, 'बुआ बच्चे हैं. गा रहे हैं. कौन कसूर हो गया.'

'ऐ हां! बच्चे हैं. तुहूं तो दूध पियत बच्ची हौ. कह दिया कि जबान न लड़ायों हमसे, हां! हम बहुतै बुरी हैं. एक तो पांच महीने से किराया नाहीं दियो और हियां दुनियां-भर के अन्धे-कोढ़ी बटुरे रहत हैं. चलौ उठायो अपनी दुकान हियां से. कल से न देखी हियां तुम्हें राम! राम! सब अधर्म की संतान राच्छस पैदा भये हैं मुहल्ले में! धरतियौ नहीं फाटत कि मर बिलाय जांय.'

गुलकी सन्न रह गयी. उसने किराया

सचमुच पांच महीने से नहीं दिया था. बिक्री नहीं थी. मुहल्ले में उनसे कोई कुछ लेता ही नहीं था, पर इसके लिए बुआ निकाल देगी यह उसे कभी आशा नहीं थी. वैसे भी महीने में बीस दिन वह भूखी सोती थी. धोती में दस-दस पैबंद थे. मकान गिर चुका था एक दालान में वह थोडी-सी जगह में सो जाती थी. पर दुकान तो वहां रखी नहीं जा सकती. उसने चाहा कि वह बुआ के पैर पकड़ ले, मिन्नत कर ले. पर बुआ ने जितनी जोर से दरवाजा खोला था उतनी ही जोर से बंद कर दिया. जब से चौमास आया था, पुरवाई बही थी, उसकी पीठ में भयानक पीड़ा उठती थी. उसके पांव कांपते थे. सट्टी में उस पर उधार बुरी तरह चढ़ गया था. पर अब होगा क्या? वह मारे खीज के रोने लगी.

इतने में कुछ खटपट हुई और उसने घुटनों से मुंह उठाकर देखा कि मौका पाकर मटकी ने एक फूट निकाल लिया है और मरभुखी की तरह उसे हबर-हबर खाती जा रही थी, एक क्षण वह उसके फूलते-पचकते पेट को देखती रही, फिर ख्याल आते ही कि फूट पूरे दस पैसे का है, वह उबल पड़ी और सड़ासड़ तीन-चार खपच्ची मारते हुए बोली, 'चोट्टी! कुतिया! तोरे बदन में कीड़ा पड़ें!' मटकी के हाथ से फूट गिर पड़ा पर वह नाली में से फूट के टुकड़े उठाते हुए भागी. न रोयी, न चीख़ी, क्योंकि मुंह में भी फूट भरा था. मिरवा हक्का-बक्का इस घटना को देख रहा था कि गुलकी उसी पर बरस पड़ी. सड़-सड़ उसने मिरवा को मारना शुरू किया, 'भाग, यहां से हरामजादे!' मिरवा दर्द से तिलमिला उठा, 'हमला पइछा देव तो जाई.' 'देत हैं पैसा, ठहर तो.' सड़! सड़! रोता हुआ. मिरवा चौतरे की ओर भागा.

निरमल की दुकान पर सन्नाटा छाया हुआ था. सब चुप उसी ओर देख रहे थे. मिरवा ने आकर कुबड़ी की शिकायत मुन्ना से की. और घूमकर बोला, 'मेवा बता तो इसे!' मेवा पहले हिचकिचाया, फिर बड़ी मुलायमियत से बोला, 'मिरवा तुम्हें बीमारी हुई है न! तो हम लोग तुम्हें नहीं छुएंगे . साथ नहीं खिलाएंगे तुम उधर बैठ जाओ.'

'हम बीमाल हैं मुन्ना?'

मुन्ना कुछ पिघला, 'हां, हमें छूओ मत. निमकौड़ी खरीदना हो तो उधर बैठ जाओ हम दूर से फेंक देंगे. समझे!' मिरवा समझ गया सिर हिलाया और अलग जाकर बैठ गया. मेवा ने निमकौड़ी उसके पास रख दी और चोट भूलकर पकी निमकौड़ी का बीजा निकाल कर छीलने लगा. इतने में उधर से घेघा बुआ की आवाज आयी, 'ऐ मुन्ना! तई तू लोग परे हो जाओ! अबहिन पानी गिरी ऊपर से!' बच्चो ने ऊपर देखा. तिछत्ते पर घेघा बुआ मारे पानी के छप-छप करती घूम रही थीं. कूड़े से तिछत्ते की नाली बंद थी और पानी भरा था. जिधर बुआ खड़ी थीं उसके ठीक नीचे गुलकी

का सौदा था. बच्चे वहां से दूर थे पर गुलकी को सुनने के लिए बात बच्चों से कही गयी थी. गुलकी कराहती हुई उठी. कूबड़ की वजह से वह तनकर तिछत्ते की ओर देख भी नहीं सकती थी. उसने धरती की ओर देखा ऊपर बुआ से कहा, 'इधर की नाली काहे खोल रही हो? उधर की खोलो न!'

'काहे उधर की खोली! उधर हमारा चौका है कि नै!'

'इधर हमारा सौदा लगा है.'

'ऐ है!' बुआ हाथ चमका कर बोलीं, सौदा लगा है रानी साहब का! किराया देय की दायीं हियाव फाटत है और टर्राय के दायीं नटई में गामा पहिलवान का जोर तो देखो! सौदा लगा है तो हम का करी. नारी तो इहै खुली है!'

'खोलो तो देखैं!' अकस्मात् गुलकी ने तड़प कर कहा. आज तक किसी ने उसका वह स्वर नहीं सुना था– 'पांच महीने का दस रूपया नहीं दिया बेशक, पर हमारे घर की धन्नी निकाल के बसंतू के हाथ किसने बेचा? तुमने. पच्छिम ओर का दरवाजा चिरवा के किसने जलवाया? तुमने. हम गरीब हैं. हमारा बाप नहीं है सारा मुहल्ला हमें मिल के मार डालो.'

'हमें चोरी लगाती है. अरे कल की पैदा हुई.' बुआ मारे गुस्से के खड़ी बोली बोलने लगी थीं.

बच्चे चुप खड़े थे. वे कुछ-कुछ सहमे हुए थे. कुबड़ी का यह रूप उन्होंने कभी न देखा न सोचा था

'हां! हां! हां. तुमने, ड्राइवर चाचा ने, चाची ने सबने मिलके हमारा मकान उजाड़ा है. अब हमारी दुकान बहाय देव. देखेंगे हम भी. निरबल के भी भगवान हैं!'

'ले! ले! ले! भगवान हैं तो ले!' और बुआ ने पागलों की तरह दौड़कर नाली में जमा कूड़ा लकड़ी से ठेल दिया. छह इंच मोटी गन्दे पानी की धार धड़-धड़ करती हुई उसकी दुकान पर गिरने लगी. तरोइयां पहले नाली में गिरीं, फिर मूली, खीरे, साग, अदरक उछल-उछलकर दूर जा गिरे. गुलकी आंख फाड़े पागल-सी देखती रही और फिर दीवार पर सर पटककर हृदय-विदारक स्वर में डकराकर रो पड़ी, 'अरे मोर बाबू, हमें कहां छोड़ गये! अरे मोरी माई, पैदा होते ही हमें क्यों नहीं मार डाला! अरे धरती मैया, हमें काहे नहीं लील लेती!'

सिर खोले बाल बिखेरे छाती कूट-कूटकर वह रो रही थी और तिछत्ते का पिछले नौ दिन का जमा पानी धड़-धड़ गिर रहा था.

बच्चे चुप खड़े थे. अब तक जो हो रहा था, उनकी समझ में आ रहा था. पर आज यह क्या हो गया, यह उनकी समझ में नहीं आ सका. पर वे कुछ बोले नहीं. सिर्फ मटकी उधर गयी और नाली में बहता हुआ हरा खीरा निकालने लगी कि मुन्ना ने डांटा, 'खबरदार! जो कुछ चुराया.' मटकी पीछे हट गयी. वे सब किसी

अप्रत्याशित भय संवेदना या आशंका से जुड़-बटुरकर खड़े हो गये. सिर्फ़ मिरवा अलग सिर झुकाये खड़ा था. झींसी फिर पड़ने लगी थी और वे एक-एक कर अपने घर चले गये.

दूसरे दिन चौतरा खाली था. दुकान का बांस उखड़वाकर बुआ ने नांद में गाड़कर उस पर तुरई की लतर चढ़ा दी थी. उस दिन बच्चे आये पर उनकी हिम्मत चौतरे पर जाने की नहीं हुई. जैसे वहां कोई मर गया हो. बिल्कुल सुनसान चौतरा था और फिर तो ऐसी झड़ी लगी कि बच्चों का निकलना बंद. चौथे या पांचवें दिन रात को भयानक वर्षा तो हो ही रही थी, पर बादल भी ऐसे गरज रहे थे कि मुन्ना अपनी खाट से उठकर अपनी मां के पास घुस गया. बिजली चमकते ही जैसे कमरा रोशनी से नाच-नाच उठता था छत पर बूदों की पटर-पटर कुछ धीमी हुई, थोड़ी हवा भी चली और पेड़ों का हरहर सुनाई पड़ा कि इतने में धड़-धड़-धड़-धड़ाम! भयानक आवाज़ हुई. मां भी चौंक पड़ी. पर उठी नहीं. मुन्ना आंखें खोले अंधेरे में ताकने लगा. सहसा लगा मुहल्ले में कुछ लोग बातचीत कर रहे हैं. घेघा बुआ की आवाज़ सुनाई पड़ी–'किसका मकान गिर गया है रे' 'गुलकी का!'-किसी का दूरागत उत्तर आया. 'अरे बाप रे! दब गयी क्या?' 'नहीं, आज तो मेवा की मां के यहां सोई है! मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अंधेरे में यह सवाल-जवाब इधर-से-उधर और उधर-से-इधर आ रहे थे. वह फिर कांप उठा, मां के पास घुस गया और सोते-सोते उसने साफ़ सुना-कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़कर रो रही है! कौन जाने मुन्ना के ही आंगन में बैठकर रो रही हो! नींद में वह स्वर कभी दूर कभी पास आता हुआ लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आंगन में जाकर रो रही है पर कोई सुन नहीं रहा है, सिवा मुन्ना के.

बच्चों के मन में कोई बात इतनी गहरी लकीर बनाती कि उधर से उनका ध्यान हटे ही नहीं. सामने गुलकी थी तो वह एक समस्या थी, पर उसकी दुकान हट गयी, फिर वह जाकर साबुन वाली सत्ती के गलियारे में सोने लगी और दो-चार घरों से मांग-मूंगकर खाने लगी, उस गली में दिखती ही नहीं थी. बच्चे भी दूसरे कामों में व्यस्त हो गये. अब जाड़े आ रहे थे. उनका जमावड़ा सुबह न होकर तीसरे पहर होता था. जमा होने के बाद जूलूस निकलता था. और जिस जोशीले नारे से गली गूंज उठती थी वह था–'घेघा बुआ को वोट दो.' पिछले दिनों म्युनिसिपैलिटी का चुनाव हुआ था और उसी में बच्चों ने यह नारा सीखा था. वैसे कभी-कभी बच्चों में दो पार्टियां भी होती थीं, पर दोनों को घेघा बुआ से अच्छा उम्मीदवार कोई नहीं मिलता था अत: दोनों गला फाड़-फाड़कर उनके ही लिए बोट मांगती थीं.

उस दिन जब घेघा बुआ के धैर्य का बांध टूट गया और नयी-नयी गालियों से विभूषित अपनी पहली इलेक्शन स्पीच देने ज्यों ही चौतरे पर अवतरित हुईं कि उन्हें डाकिया आता हुआ दिखाई पड़ा. वह अचकचाकर रुक गयीं. डाकिये के हाथ में एक पोस्टकार्ड था और वह गुलकी को ढूंढ़ रहा था. बुआ ने लपक कर पोस्टकार्ड लिया, एक सांस में पढ़ गयीं. उनकी आंखें मारे अचरज के फैल गयीं, और डाकिये को यह बताकर कि गुलकी सत्ती साबुनवाली के ओसारे में रहती है, वे झट से दौड़ी-दौड़ी निरमल की मां ड्राइवर की पत्नी के यहां गयीं. बड़ी देर तक दोनों में सलाह-मशविरा होता रहा और अंत में बुआ आयीं और उन्होंने मेवा को भेजा, 'जा गुलकी को बुलाय ला!'

पर जब मेवा लौटा तो उसके साथ गुलकी नहीं वरन् सत्ती साबुनवाली थी और सदा की भांति इस समय भी उसकी कमर से वह काले बेंट का चाकू लटक रहा था, जिससे वह साबुन की टिक्की काटकर दुकानदारों को देती थी. उसने आते ही भौं सिकोड़कर बुआ को देखा और कड़े स्वर में बोली, 'क्यों बुलाया है गुलकी को? तुम्हारा दस रुपये किराया बाकी था, तुमने पंद्रह रुपये का सौदा उजाड़ दिया! अब क्या काम है!' 'अरे राम! राम! कैसा किराया बेटी! अंदर जाओ-अंदर जाओ!' बुआ के स्वर में असाधारण मुलायमियत थी. सत्ती के अंदर जाते ही बुआ ने फटाक् से किवाड़ा बंद कर लिये. बच्चों का कौतूहल बहुत बढ़ गया था. बुआ के चौके में एक झंझरी थी. सब बच्चे वहां पहुंचे और आंख लगाकर कनपटियों पर दोनों हथेलियां रखकर घण्टीवाला बाइसकोप देखने की मुद्रा में खड़े हो गये.

अंदर सत्ती गरज रही थी, 'बुलाया है तो बुलाने दो. क्यों जाए गुलकी? अब बड़ा खयाल आया है. इसलिए कि उसकी रखैल को बच्चा हुआ है जो जाके गुलकी झाड़ू-बुहारू करे, खाना बनावे, बच्चा खिलावे, और वह मरद का बच्चा गुलकी की आंख के आगे रखैल के साथ गुलछर्रे उड़ावे!'

निरमल की मां बोलीं, 'अपनी बिटिया, पर गुजर तो अपने आदमी के साथ करैगी न! जब उसकी पत्नी आयी है तो गुलकी को जाना चाहिए. और मरद तो मरद. एक रखैल छोड़ दुई-दुई रखैल रख ले तो औरत उसे छोड़ देगी? राम! राम!'

'नहीं, छोड़ नहीं देगी तो जाय कै लात खायेगी?' सत्ती बोली.

'अरे बेटा!' बुआ बोलीं, 'भगवान रहें न? तौन मथुरापुरी में कुब्जा दासी के लात मारिन तो ओकर कूबर सीधा हुइ गवा. पती तो भगवान हैं बिटिया. ओका जाय देव!'

'हां-हां, बड़ी हितू न बनिये! उसके आदमी से आप लोग मुफ्त में गुलकी

का मकान झटकना चाहती हैं. मैं सब समझती हूं.'

निरमल की मां का चेहरा ज़र्द पड़ गया. पर बुआ ने ऐसी कच्ची गोली नहीं खेली थी. वे डपटकर बोलीं, 'खबरदार जो कच्ची जबान निकाल्यो! तुम्हारा चरित्तर कौन नै जानता! ओही छोकरा मानिक.'

जबान खींच लूंगी, 'सत्ती गला फाड़कर चीख़ी जो आगे एक हरूफ़ कहा.' और उसका हाथ अपने चाकू पर गया-

'अरे! अरे! अरे!' बुआ सहमकर दस कदम पीछे हट गयीं-'तो का खून करबो का, कतल करबो का?' सत्ती जैसे आयी थी वैसे ही चली गयी.

तीसरे दिन बच्चों ने तय किया कि होरी बाबू के कुएं पर चलकर बर्रें पकड़ी जायें. उन दिनों उनका जहर शांत रहता है, बच्चे उन्हें पकड़कर उनका छोटा-सा काला डंक निकाल लेते और फिर डोरी में बांधकर उन्हें उड़ाते हुए घूमते. मेवा, निरमल और मुन्ना एक-एक बर्रे उड़ाते हुए जब गली में पहुंचे तो देखा बुआ के चौतरे पर टीन की कुरसी डाले कोई आदमी बैठा है. उसकी अजब शक्ल थी. कान पर बड़े-बड़े बाल, मिचमिची आंखें, मोछा और तेल से चुचुआते हुए बाल. कमीज और धोती पर पुराना बदरंग बूट. मटकी हाथ फैलाये कह रही है, 'एक डबल दै देव! एक दै देव ना?' मुन्ना को देखकर मटकी ताली बजा-बजाकर कहने लगी, 'गुलकी का मनसेधू आवा है. ए मुन्ना बाबू! ई कुबड़ी का मनसेधू है.' फिर उधर मुड़कर– 'एक डबल दै देव.' तीनों बच्चे कौतूहल में रुक गये. इतने में निरमल की मां एक गिलास में चाय भरकर लायी और उसे देते-देते निरमल के हाथ में बर्रे देखकर उसे डांटने लगी. फिर बर्रे छुड़ाकर निरमल को पास बुलाया और बोली, 'बेटा, ई हमारी निरमला है. ए निरमल, जीजाजी हैं, हाथ जोड़ो! बेटा, गुलकी हमारी जात-बिरादरी की नहीं है तो का हुआ, हमारे लिए जैसे निरमल वैसे गुलकी. अरे, निरमल के बाबू और गुलकी के बाप की दांत काटी रही. एक मकान बचा है उनकी चिहारी, और का?' एक गहरी सांस लेकर निरमल की मां ने कहा.

'अरे तो का उन्हें कोई इनकार है?' बुआ आ गयी थीं, 'अरे सौ रुपये तुम दैवे किये रहय्यू, चलो तीन सौ और दै देव. अपने नाम कराय लेव?'

'पांच सौ से कम नहीं होगा?' उस आदमी का मुंह खुला, एक वाक्य निकला और मुंह फिर बंद हो गया.

'भवा! भवा! ऐ बेटा दामाद हौ, पांच सौ कहबो तो का निरमल की मां को इनकार है?'

अकस्मात् वह आदमी उठकर खड़ा हो गया. आगे-आगे सत्ती चली आ रही थी – पीछे-पीछे गुलकी. सत्ती चौतरे के नीचे खड़ी हो गयी. बच्चे दूर हट गये. गुलकी ने सिर उठाकर देखा और अचकचाकर

सिर पर पल्ला डालकर माथे तक खींच लिया. सत्ती दो-एक क्षण उसकी ओर एकटक देखती रही और फिर गरजकर बोली, 'यही कसाई है! गुलकी, आगे बढ़कर मार दो चपोटा इसके मुंह पर! खबरदार जो कोई बोला? ' बुआ चट से देहरी के अंदर हो गयीं, निरमल की मां की जैसे घिग्घी बंध गयी और वह आदमी हड़बड़ाकर पीछे हटने लगा.

'बढ़ती क्यों नहीं गुलकी! बड़ा आया वहां से बिदा कराने?'

गुलकी आगे बढ़ी. सब सन्न थे. सीढ़ी चढ़ी, उस आदमी के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं. गुलकी चढ़ते-चढ़ते रुकी, सत्ती की ओर देखा, ठिठकी, अकस्मात् लपकी और फिर उस आदमी के पांव पर गिर के फफक-फफककर रोने लगी, 'हाय! हमें काहे को छोड़ दियौ! तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है! अरे, हमरे मरै पर कौन चुल्लू भर पानी चढ़ायी.'

सत्ती का चेहरा स्याह पड़ गया. उसने बड़ी हिकारत से गुलकी की ओर देखा और गुस्से में थूक निगलते हुए कहा, 'कुतिया!' और तेजी से चली गयी. निरमल की मां और बुआ गुलकी के सिर पर हाथ फेर-फेरकर कह रही थीं, 'मत रो बिटिया! मत रो! सीता मैया भी तो बनवास भोगिन रहा. उठो गुलकी बेटा! धोती बदल लेव कंघी चोटी करो. पति के सामने ऐसे आना असगुन होता है. चलो!'

गुलकी आंसू पोंछती-पोंछती निरमल की मां के घर चली. बच्चे पीछे-पीछे चले तो बुआ ने डांटा, 'ऐ चलो एहर, हुंआ लड्डू बंट रहा है का?'

दूसरे दिन निरमल के बाबू (ड्राइवर साहब), गुलकी और जीजाजी दिन-भर कचहरी में रहे. शाम को लौटे तो निरमल की मां ने पूछा, 'पक्का कागज लिख गया?'

'हां-हां रे, हाकिम, के सामने लिख गया.' फिर जरा निकट आकर फुसफुसाकर बोले, 'मट्टी के मोल मकान मिला है. अब कल दोनों को बिदा करो.'

'अरे, पहले सौ रुपये लाओ! बुआ का हिस्सा भी तो देना है?'-निरमल की मां उदास स्वर में बोली, 'बड़ी चंट है बुढ़िया. गाड़-गाड़ के रख रही है, मर के सांप होयगी.'

सुबह निरमल की मां के यहां मकान खरीदने की कथा थी. शंख, घण्टा-घड़ियाली, केले का पत्ता, पंजीरी, पंचामृत का आयोजन देखकर मुन्ना के अलावा सब बच्चे इकट्ठा थे. निरमल की मां और निरमल के बाबू पीढ़े पर बैठे थे; गुलकी एक पीली धोती पहने माथे तक घूंघट काढ़े सुपारी काट रही थी और बच्चे झांक-झांककर देख रहे थे. मेवा ने पहुंचकर कहा, 'ए गुलकी, ए गुलकी, जीजाजी के साथ जाओगी क्या?' कुबड़ी ने झेंपकर कहा, 'धत्त रे! ठिठोली करता है.' और लज्जा-

भरी जो मुस्कान किसी भी तरुणी के चेहरे पर मनमोहक लाली बनकर फैल जाती, उसके झुर्रियोंदार, बेडौल, नीरस चेहरे पर विचित्र रूप से वीभत्स लगने लगी. उसके काले पपड़ीदार होठ सिकुड़ गये, आंखों के कोने मिचमिचा उठे और अत्यंत कुरुचिपूर्ण ढंग से उसने अपने पल्ले से सिर ढांक लिया और पीठ सीधी कर जैसे कूबड़ छिपाने का प्रयास करने लगी. मेवा पास ही बैठ गया. कुबड़ी ने पहले इधर-उधर देखा, फिर फुसफुसाकर मेवा से कहा, 'क्यों रे! जीजाजी कैसे लगे तुझे?' मेवा ने असमंजस में या संकोच में पड़कर कोई जवाब नहीं दिया तो जैसे अपने को समझाते हुए गुलकी बोली, 'कुछ भी होय. है तो अपना आदमी! हारे-गाढ़े कोई और काम आयेगा? औरत को दबाय के रखना ही चाहिए.' फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोली, 'मेवा भैया, सत्ती हमसे नाराज है. अपनी सगी बहन क्या करेगी जो सत्ती ने किया हमारे लिए. ये चाची और बुआ तो सब मतलब के साथी हैं हम क्या जानते नहीं? पर भैया अब जो कहो कि हम सत्ती के कहने से अपने मरद को छोड़ दें, सो नहीं हो सकता.' इतने में किसी का छोटा-सा बच्चा घुटनों के बल चलते-चलते मेवा के पास आकर बैठ गया. गुलकी क्षण-भर उसे देखती रही फिर बोली, 'पति से हमने अपराध किया तो भगवान् ने बच्चा छीन लिया, अब भगवान् हमें छमा कर देंगे.' फिर कुछ क्षण के लिए चुप हो गयी. 'क्षमा करेंगे तो दूसरी संतान देंगे?' 'क्यों नहीं देंगे? तुम्हारे जीजाजी को भगवान् बनाये रखे. खोट तो हमी में है. फिर संतान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा.'

इतने में गुलकी ने देखा कि दरवाजे पर उसका आदमी खड़ा बुआ से कुछ बातें कर रहा है. गुलकी ने तुरंत पल्ले से सिर ढंका और लजाकर उधर पीठ कर ली. बोली, 'राम! राम! कितने दुबरा गये हैं. हमारे बिना खाने-पीने का कौन ध्यान रखता! अरे, सौत तो अपने मतलब की होगी. ले भैया मेवा, जा दो बीड़ा पान दे आ जीजा को?' फिर उसके मुंह पर वही लाज की वीभत्स मुद्रा आयी– 'तुझे कसम है, बताना मत किसने दिया है.'

मेवा पान लेकर गया पर वहां किसी ने उसपर ध्यान ही नहीं दिया. वह आदमी बुआ से कह रहा था, 'इसे ले तो जा रहे हैं, पर इतना कहे देते हैं, आप भी समझा दें उसे कि रहना हो तो दासी बनकर रहे. न दूध की न पूत की, हमारे कौन काम की; पर हां औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहे. पर कभी उससे जबान लड़ाई तो खैर नहीं. हमारा हाथ बड़ा जालिम है. एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान निकलेगा.'

'क्यों नहीं बेटा! क्यों नहीं?' बुआ बोलीं और उन्होंने मेवा के हाथ से पान

लेकर अपने मुंह में दबा लिये.

करीब तीन बजे इक्का लाने के लिए निरमल की मां ने मेवा को भेजा. कथा की भीड़-भाड़ से उनका मूड़ पिराने लगा था, अत: अकेली गुलकी सारी तैयारी कर रही थी. मटकी कोने में खड़ी थी. मिरवा और झबरी बाहर गुमसुम बैठे थे. निरमल की मां ने बुआ को बुलवाकर पूछा कि बिदा-बिदाई में क्या करना होगा, तो बुआ मुंह बिगाड़कर बोलीं, 'अरे कोई जात-बिरादरी की है का? एक लोटा में पानी भर के इकन्नी-दुअन्नी उतार के परजा-पजारू को दे दियो बस?' और फिर बुआ शाम की बियारी में लग गयीं.

इक्का आते ही जैसे झबरी पागल-सी इधर-उधर दौड़ने लगी. उसे जाने कैसे आभास हो गया कि गुलकी जा रही है, सदा के लिए. मेवा ने अपने छोटे-छोटे हाथों से बड़ी-बड़ी गठरियां रखीं, मटकी और मिरवा चुपचाप आकर इक्के के पास खड़े हो गये. सर झुकाये पत्थर-सी चुप गुलकी निकली. आगे-आगे हाथ में पानी का भरा लोटा लिये निरमल थी. वह आदमी जाकर इक्के पर बैठ गया. 'अब जल्दी करो!' उसने भारी गले से कहा. गुलकी आगे बढ़ी, फिर रुकी और टेंट से दो अधन्नी निकाले– 'ले मिरवा, ले मटकी?'–मटकी जो हमेशा हाथ फैलाये रहती थी, इस समय जाने कैसा संकोच उसे आ गया कि वह हाथ नीचे कर दीवार से सट कर खड़ी हो गयी और सिर हिलाकर बोली, 'नहीं?' –'नहीं बेटा! ले लो!' गुलकी ने पुचकार कर कहा. मिरवा-मटकी ने पैसे ले लिये और मिरवा बोला, 'छलाम गुलकी! ए आदमी छलाम?'

'अब क्या गाड़ी छोड़नी है?' –वह फिर भारी गले से बोला.

'ठहरो बेटा, कहीं ऐसे दामाद की बिदाई होती है?' सहसा एक बिलकुल अजनबी किंतु अत्यंत मोटा स्वर सुनायी पड़ा. बच्चों ने अचरज से देखा, मुन्ना की मां चली आ रही हैं. –'हम तो मुन्ना का आसरा देख रहे थे कि स्कूल से आ जाये, उसे नाश्ता करा लें तो आयें, पर इक्का आ गया तो हमने समझा अब तू चली. अरे! निरमल की मां, कहीं ऐसे बेटी की बिदाई होती है! लाओ जरा रोली घोलो जल्दी से, चावल लाओ, और सेंदुर भी ले आना निरमल बेटा! तुम बेटा उतर आओ इक्के से!'

निरमल की मां का चेहरा स्याह पड़ गया था. बोलीं–'जितना हमसे बन पड़ा किया. किसी को दौलत का घमण्ड थोड़े ही दिखाना था?' –'नहीं बहन! तुमने तो किया पर मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है. हमारा भी तो फर्ज था. अरे मां-बाप नहीं हैं तो मुहल्ला तो है. आओ बेटा?' –और उन्होंने टीका करके आंचल के नीचे छिपाये हुए कुछ कपड़े

और एक नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया. गुलकी जो अभी तक पत्थर-सी चुप थी सहसा फूट पड़ी. उसे पहली बार लगा जैसे वह मायके से जा रही है. मायके से अपनी मां को छोड़कर छोटे-छोटे भाई-बहनों को छोड़कर और वह अपने कर्कश फटे हुए गले से विचित्र स्वर से रो पड़ी.

'ले अब चुप हो जा! तेरा भाई भी आ गया?'–वे बोलीं. मुन्ना बस्ता लटकाये स्कूल से चला आ रहा था. कुबड़ी को अपनी मां के कंधे पर सिर रखकर रोते देखकर वह बिल्कुल हतप्रभ-सा खड़ा हो गया–'आ बेटा, गुलकी जा रही है न आज! दीदी है न! बड़ी बहन है. चल पांव छू ले! आ इधर?'–मां ने फिर कहा. मुन्ना और कुबड़ी के पांव छुए? क्यों? क्यों? पर मां की बात! एक क्षण में उसके मन में जैसे एक पूरा पहिया घूम गया और वह गुलकी की ओर बढ़ा. गुलकी ने दौड़कर उसे चिपका लिया और फूट पड़ी–'हाय मेरे भैया! अब हम जा रहे हैं! अब किससे लड़ोगे मुन्ना भैया? अरे मेरे वीरन, अब किससे लड़ोगे?' मुन्ना को लगा जैसे उसकी छोटी-छोटी पसलियों में एक बहुत बड़ा-सा आंसू जमा हो गया जो अब छलकने ही वाला है. इतने में उस आदमी ने फिर आवाज दी और गुलकी कराहकर मुन्ना की मां का सहारा लेकर इक्के पर बैठ गयी. इक्का खड़-खड़ कर चल पड़ा. मुन्ना की मां मुड़ी कि बुआ ने व्यंग्य किया,-'एक आध गाना भी बिदाई का गाये जाओ बहन! गुलकी बन्नो ससुराल जा रही है!' –मुन्ना की मां ने कुछ जवाब नहीं दिया, मुन्ना से बोली, 'जल्दी घर आना बेटा, नाश्ता रखा है?'

पर पागल मिरवा ने, जो बम्बे पर पांव लटकाये बैठा था, जाने क्या सोचा कि वह सचमुच गला फाड़कर गाने लगा, 'बन्नो डाले दुपट्टे का पल्ला, मुहल्ले से चली गयी राम?' यह उस मुहल्ले में हर लड़की की बिदा पर गाया जाता था. बुआ ने घुड़का तब भी वह चुप नहीं हुआ, उलटे मटकी बोली, –'काहे न गावें, गुलकी नै पैसा दिया है?' और उसने भी सुर मिलाया, –'बन्नो तली गयी लाम! बन्नो तली गयी लाम! बन्नो तली गयी लाम!'

मुन्ना चुपचाप खड़ा रहा. मटकी डरते-डरते आयी–'मुन्ना बाबू! कुबड़ी ने अधन्ना दिया है, ले लें?'

'ले ले'–बड़ी मुश्किल से मुन्ना ने कहा और उसकी आंख में दो बड़े-बड़े आंसू डबडबा आये. उन्हीं आंसुओं की झिलमिल में कोशिश करके मुन्ना ने जाते हुए इक्के की ओर देखा. गुलकी आंसू पोंछते हुए परदा उठाकर मुड़-मुड़कर देख रही थी. मोड़ पर एक धचके से इक्का मुड़ा और फिर अदृश्य हो गया.

सिर्फ झबरी सड़क तक इक्के के साथ गयी और फिर लौट गयी. ❑

स्मरण

आशा के आसमान में उमंग की अनकटी पतंग!

● हेमंत शेष

'...अपने पुराने दिनों, पुरानी किताबों को
याद करना भी कैसा होता है–
किसी रोशनी का सिमटता
उदास पिछवाड़ा.'

ये हैं, उस कविता की अंतिम चार पंक्तियां, जिसे हमारे समय और समाज के एक बड़े लेखक– नंद चतुर्वेदी जी ने कभी लिखा था.... आज फिर से उनके परिवारजन ने मिल जुल कर, एक पुरानी किताब खोली है– जैसे पुराने दिनों का वही पिछवाड़ा हो .... हुआ सिर्फ ये है कि याद की रोशनी, मेरे मन के बरामदे में, सिमटने की बजाय थोड़ा और उजली हो गयी है ....

नंद बाबू को याद करते मुझे सब से पहले तो यही याद आया– उनका मन, कविताओं, गद्य, और वैचारिक लेखों के अलावा, उनकी उन सैंकड़ों चिट्ठियों में या भाषणों में भी टटोला जा सकता है ...अपने दोस्तों, कनिष्ठों, प्रशंसकों और साहित्यिक-मित्रों को वह आत्मीय-भाव से पत्र लिखते रहे थे.

मेरे जैसे अनगिनत लोगों के पास उनकी अनेकानेक चिट्ठियां क्या इस बात का सबूत नहीं कि अपने मित्रों से वह कितने गहरे जुड़े हुए थे!

हर पत्र में, साहित्य को लेकर अनेक गम्भीर चिंताएं भी रहतीं. दोस्तों के अलावा,

वह साहित्य के भी उतने ही गहरे हितचिंतक थे और उन्हीं सांस्कृतिक-चिंताओं में आखिर तक बने रहे.....

जैसा आप सभी जानते हैं, नंद बाबू के साथ एक विलक्षण बात ये हुई कि उनकी पहली किताब तब छपी, जब वह साठ बरस के हो गये थे– जबकि कविता लिखते हुए, उन्हें तब तक शायद चालीस साल से भी ज़्यादा हो चुके थे, आत्म-प्रचार और छपास के इस दौर में प्रकाशन-सम्बंधी उनकी ये निस्पृहता थोड़ी असामान्य ज़रूर है– पर ये बात सच है ..... साठ साल जब भारत में सेवानिवृत्ति या साहित्य से लगभग वानप्रस्थ का समय हुआ करता है, यह देखना प्रीतिकर और आश्चर्यजनक दोनों है, कि उनके जीवन के उत्तरार्ध में उनकी एक के बाद अनेक किताबें लगातार आयीं हैं. पर पहली किताब तब छापी गयी, जब षष्टिपूर्ति पर, हम अधिकतर भारतीय लोग ताराप्रकाश जोशी के एक गीत 'सांझ हुई चल पंख समेटें' की तर्ज़ पर अवकाश-ग्रहण की मानसिकता के नज़दीक पहुंचने लगते हैं...

नंद जी ने पूर्णकालिक लेखक के तौर पर शिक्षा, सम्पादन, चिंतन-मनन, वाग्मिता, अनुवाद, अध्यापन, अध्यापक-राजनीति, कई इलाकों में योगदान किया, पर उनकी असल प्रसिद्धि का क्षेत्र रहा है– काव्य, जिस के बहुत सारे आयाम उनके सुदीर्घ-लेखन में नज़र आते हैं– नंद जी की कविता-यात्रा के बहुत से पड़ाव हैं, किंतु उनके कवि के सम्बंध में एक आश्चर्यजनक बात ये है कि अपने अध्ययन और सचेत चेष्टाओं से उन्होंने अपने काव्य-मुहावरे को बराबर समकालीन रखा.

वह भारतीय समाज में मनुष्य की स्थिति और उसके उन्नयन की अभिलाषा के कवि थे. बृजभाषा दौर के उनके अनेक साथी कवि रहे होंगे, पर ऐसे कितने हैं जो अपने समय के साथ उस तरह बदले जैसी नंद बाबू की कविता? किसी एक शैली या ढंग में रूढ़ न होना ही उनकी अपनी नवाचारिता जीवंतता और जिजीविषा का प्रमाण है. अपने विश्वास, अपनी आस्था की लौ को उन्होंने कभी मंद नहीं पड़ने दिया.

मिजाज़ से संवादप्रिय और प्रकृति से जिज्ञासु होने के चलते ही वह नये से नये, पर सम्भावनाशील या सक्षम लेखक की रचनाओं को उत्सुकता से पढ़ते और हरसम्भव चेष्टा से 'नवलेखन', आधुनिक मुहावरे के संपर्क में बने रहना चाहते थे– वर्ना कहां बृजभाषा का वह रूमानी– दोहे, सोरठे, सवैये और छप्पय वाला छंदपूर्ण सामंती-दौर और कहां आज की छंदमुक्त किंतु गम्भीरतर विचार-कविता?

झालावाड़ स्टेट के राजसी कवि-दरबार में लगभग बाल्यावस्था में नंद जी ने अपनी साहित्य-यात्रा की शुरूआत बृजभाषा की परम्परागत समस्या-पूर्तिनुमा कविता से

की थी, अपने पहले दरबारी काव्यपाठ के अवसर का बड़ा मनोरंजक विवरण उन्होंने एकाधिक बार दिया है तब वह सातवीं कक्षा के विद्यार्थी भर थे .....पर उनकी दशकों लम्बी लेखन-यात्रा ने घोर परम्परा से आधुनिकता तक के कई पड़ाव देखे और तय किये– इसलिए उनके यहां प्रच्छन्न ढंग से अगर परम्परा की ताक़त है, तो भाषा, मुहावरे और कथ्य में समकालिक नयेपन को स्वीकारने का साहस भी.

आमफहम शब्दों के अलावा कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्दों से भी उन्होंने अपनी कविता-काया को और रोमांचक बनाया. किसी सुगंध-वृक्ष की तरह....वहां ऋतुओं की याद का संसार है, इतिहास के खंडहर हैं, समय के विद्रूप, शोक और अवसाद की छायाएं, पुराने लोग और खो चुकी जगहें हैं, कहीं-कहीं व्यंग्य-बाण हैं, दुर्घटनाएं हैं– उल्लास और उत्सवधर्मिता भी : सब मिला कर वह कविता अनजाने या अदृश्य के मुकाबले आज और अभी के जीवन की कविता है– जिसके सारे दृश्य और आमफहम चरित्र परिचित हैं, पर कवि के भीतर का यह रेखांकन कई आकर्षक काव्यात्मक चेष्टाओं से भरा है!

उनके साहित्य को अगर एक बीजपद में सीमित करने को कहा जाय तो वह होगा– हर तरह के अप्रीतिकर अंधेरे से मुक्ति की अपराजित आकांक्षा! यह निस्संदेह सारे भारतीय या विश्व साहित्य की दिशा है, जहाँ अमंगल के अंधेरों पर बेहतरीन समय की आकांक्षा का अकेला दीप झिलमिलाता है– आंधियों और बारिशों में भी जलता हुआ! मुझे कई बार लगता है– संसार के सब कवि मिल कर बस यही कविता लिखते आये हैं, अलग अलग भाषाओं या शब्दों में पर वह एक ही कविता है– मैत्री, शांति, सद्भाव, उन्नति, स्वाधीनता और मुक्ति की...नंद बाबू की रचनाएं भी उसी मानवीय विश्व-चेतना का अभिन्न हिस्सा हैं– भले चाहे जिस मुहावरे, छंद या समय में वे लिखी गयी हों . एक जगह उन्होंने लिखा था– 'मुझ से यह सवाल दबाव डाल कर बार बार पूछा जाता है कि कविता क्यों लिखते हो? अजीब बात है– मैं हर बार इस सवाल का जवाब अलग-अलग देता हूं. दरअसल मैं खुद आश्वस्त नहीं होता कि कविता लिखने के बारे में मैं कोई 'अपरिवर्तनीय-सच' कह पाऊंगा या कोई कह पायेगा? जैसे ज़िंदगी है, वैसे ही कविता है, हज़ारों तरह से व्याख्यायित, हजारों कारणों से लिखी गयी, हज़ारों आवेगों की दीप-शिखाओं से प्रज्ज्वलित, हज़ारों भावों से रस-मंडित! ....'

जीवन उनकी कविता की केंद्रीय-चिंता है : उसके उन्नयन की अखंडित अभिलाषा समेत. परिचित आसपास के दृश्यों में स्मृति की छाया भी इनकी

कविताओं में है, और सुखकारी भविष्य की आकांक्षा – निरा समकालिक समय या दुर्दांत वर्तमान तो है ही, इस तरह वह तीनों कालों की कविता एक साथ बन जाती है.... कविताओं में उनकी यह कोशिश 'उत्सव के निर्मम समय' में एक 'ईमानदार दुनिया के लिए' आगे देखने और चलने की कोशिश थी. वह जानते थे– 'यह समय मामूली नहीं', इसलिए उनकी कविता सदा वहां जाने की कोशिश होती थी– जहां 'उजाले की एक रेखा खिंची है'. ज़िंदगी से उन्होंने कहा था– 'गा मेरी ज़िंदगी, कुछ गा!' कविता के माध्यम से ही वह आम लोगों के बारे में सही अनुमान लगा सकते थे– 'वे सोये तो नहीं होंगे!' यह 'आशा के बलवती होने का' एक निष्कंप भरोसा था– 'आखिर तक वही, 'जो बचा रहा'!

'ल्यूमिनस पीक्स' तक पहुंचने के लिए उन्होंने सदा अपने समय की भाषा के आक्सीजन सिलेंडर साथ रखे और हम ये दुबारा याद रखें– हर चढ़ाई में अपने गद्य और कविता– दोनों को उन्होंने कभी 'ओब्सोलीट' होने न दिया! यह एक लेखक के रूप में हम सब के सीखने लायक बात है कि समकालीन बने रहना ही दूसरी तरह आधुनिक होना भी है. परम्परा तब तक अर्थवान नहीं जब तक वह वर्तमान और भविष्य दोनों के शिलालेख पर प्रासंगिक बने रह कर अपने हस्ताक्षर न कर सके .....नंद बाबू का लिखा, कुछ वैसे ही हस्ताक्षरों की तरह है.

●●●

नंद जी के गद्य में सर्वत्र जो खरापन, तार्किकता और विश्लेषण दिखता है वह उनकी गहरी अविचल और दृढ़ समाजवादी-अंतर्दृष्टि से आया है– उस 'कन्विक्शन' में किसी तरह की आंसू-धकेल भावुकता या राजनैतिक हठवादिता नहीं– सामजिक-औचित्य, वैज्ञानिक-तर्क और मानववादी-विवेक की प्रखर रोशनी है.

'यह हमारा समय' किताब में वह जिस प्रखरता से वर्ण-व्यवस्था, स्त्री-शक्ति, महिला-स्वातंत्र्य, दलित-प्रश्नों, समाजवाद, शिक्षा, धर्म, हिंसा, बाजारवाद, हिंदी, संचार-साधनों, पत्रकारिता, मीडिया, भारतीयता आदि गम्भीर विषयों पर एक गहरी अंतर्दृष्टि से विचार कर सकते थे– वहीं वह खेदपूर्वक बातचीत या कभी पत्रों में, इस बात को भी रेखांकित करते थे कि इधर अपने समकालीन लेखकों पर 'संस्मरणात्मक' लेखन की परम्परा हिंदी पत्रकारिता में प्राय: चुक-सी गयी है. उन्होंने इस अफ़सोस का प्रतिकार किया– कथेतर गद्य से, संस्मरण लेखन से, या अगर कभी किसी दौर में वह डायरी लिखते रहे हों तो उस से ......

'यह हमारा समय' की अपनी भूमिका में नंद जी ने लिखा था– 'गद्य-लेखन के बारे में मैं यह कहना आवश्यक समझता

हूं कि यह 'स्वत:-स्फूर्त' सर्जना नहीं है, यह अपने बाहरी दबावों की निष्पत्ति है और एक सुतार्किक निष्कर्ष तक पहुंचती यात्रा है. लेकिन यह कहना उचित नहीं है कि गद्य-लेखन 'दोयम दर्जे' की साधना है. अब कविता-भाषा का गद्य-रूप लेना, भाषा की शक्ति का विस्तार और काव्य-भाषा के वर्चस्व की प्रचलित रूढ़ियों को अस्वीकार करना भी कहा जाएगा.'

व्यवस्था के पुनर्निर्माण की आशा अब भी बची है, क्यों कि ये जो बहुत से सपने हैं हैं, वे काल्पनिक नहीं हैं. वे मनुष्य के अस्तित्व की बुनियादी शर्तें हैं, जैसे मनुष्य की स्वाधीनता, जैसे मनुष्य की समता.

इन सब आलेखों में नंदजी के कवि-मन पर समकालीन जटिल प्रश्नों की गहरी काली छाया है– पर जिससे मुक्ति पाने का सपना भी इन गद्य-रचनाओं में झिलमिलाता है. खुरदरी वास्तविकताओं और जटिल-सामाजिक-राजनैतिक षड्यंत्रों की खोज-खबर लेते उनके कई गद्य-आलेख, हमें किसी तरह भी हताशा का संदेश नहीं देते, एक आशावादी, उज्जवल भविष्य के प्रति आश्वस्ति जगाते कर्मठ लेखक के मन-मानस का पता बताते लगते हैं. दुहराव का खतरा उठाते भी मैं कहूंगा– अकुंठित-आशावाद ही उनके लेखकीय-चित्त का स्थाई-भाव है.

इसीलिये उन्होंने एक जगह लिखा था– '....व्यवस्था के पुनर्निर्माण की आशा अब भी बची है, क्योंकि ये जो बहुत से सपने हैं, वे काल्पनिक नहीं हैं....वे मनुष्य के अस्तित्व की बुनियादी शर्तें हैं, जैसे मनुष्य की स्वाधीनता, जैसे मनुष्य की समता. इनको छोड़ना सम्भव नहीं है और तब मुझे यह प्रतीत होता है– कि चाहे जितने दिन तक चीज़ें उथल-पुथल होती रहें, लेकिन अंत में समता और स्वाधीनता प्राप्त हुए बिना मनुष्य बच नहीं पायेगा.....'

●●●

अगर यादों की गठरी खोलूं तो उनके सान्निध्य की बहुत सी छवियां मेरे मन पर अंकित हैं. तुरंत तो याद यही आ रहा है : नंद जी ने हमारे संयोजन में उदयपुर और जयपुर आयोजित कुछ राष्ट्रीय-वैचारिक समागमों में बड़ी उत्सुकता और उत्साह से शिरकत की थी. भाषाई-सौष्ठव, हाज़िर-जवाबी और यथावसर व्यंग्यात्मकता, उनके भाषण और सामान्य-चर्चा तक में सहज तौर पर आती थी. वह अपनी बात बड़ी कुशलता और क्रमबद्ध, और रोचक ढंग से रखा करते थे. बोलते समय विषय के अलावा भाषा पर, शब्दों पर उनका अधिकार बड़ा मनमोहक था.

मुझे यह भी याद है- सन् 1988 में एक बार हम चार लोग एक ही कार में जयपुर से भरतपुर पहुंचे थे– पुराने

स्वाधीनता सेनानी, भूतपूर्व मंत्री और पाक्षिक 'लोक शिक्षक' के सम्पादक युगलकिशोर चतुर्वेदी जी, नंद जी, सुविख्यात विद्वान कलानाथ शास्त्री जी और मैं. उम्र में सब से कनिष्ठ होने से मुझे आगे ड्राइवर के पास बैठना ही था. पीछे दाहिनी तरफ नंद जी बाएं पंडित युगल किशोर जी और बीच में कलानाथ शास्त्री जी ....दोनों के बीच शास्त्री जी की 'हैम इन सेंडविच' वाली दशा देख कर मेरे मुंह से बरबस निकल पड़ा– 'दो चौबों के बीच में साबुत बच्यो न कोय!' एम्बेसेडर कार में पिछली सीट पर तीनों की हंसी का फव्वारा छूटा और आगे के पांच घंटों का सफ़र कैसे हंसी-परिहास में निकल गया किसी को पता ही न चला. भरतपुर में पूरी सुबह से दिन भर आयोजित एक बड़ी उबाऊ किसी सम्मलेन या गोष्ठी में नंद जी के बोलने का नम्बर, अध्यक्ष होने के नाते सब से अंत में आया, तब तक शाम हो चुकी थी! अधिकतर श्रोता हताश, क्लांत, अन्यमनस्क और उनींदे हो चले थे– पर नंद बाबू का वक्तव्य शुरू होते ही जैसे हम सब के शरीर में एक नया करेंट-सा प्रवाहित हुआ और सारी सभा जैसे एकदम से जाग गयी! वह वहां भी बोले और खूब बोले...सम्मेलन की आखिरी शाम का उनका वह लम्बा सा भाषण ऊबे और उकताए हुए लोगों को बरसों तक याद रहा.

इसी तरह दिल्ली, जोधपुर, भरतपुर, या जयपुर में जब-जब हम दो चार लोग, उनके आसपास जमा हुए, उनकी चर्चा और व्यक्तित्व की जीवंतता से हर बार 'पुनर्नवा' हुए! होटल के कमरे में कई बार, देर रात, वह सिर्फ सोने के लिए जाते थे– हर वक़्त मित्रों से चर्चा करना या हंसी-चुहल उनका पसंदीदा शगल था...साहित्य के अखाड़े में स्वभाव से वह बातूनी, उदार और साहसी थे.

कलकत्ते की 'रविवार' पत्रिका के कवितांक के अतिथि-सम्पादक के रूप में उन्होंने प्रेम से मेरी दो-तीन रचनाएं सचित्र छापीं....इस से पहले अपनी पत्रिका 'बिंदु' में सन् सत्तर के शुरूआती दशक में मेरी कविताएं छापते हुए एक खत में उन्होंने चेतावनी देते लिखा था– 'तुम्हारी कविताएं बहुत अच्छी हैं– 'बिंदु' के नये अंक में जा रही हैं– मुझे पता नहीं तुम अभी विद्यार्थी हो या क्या- पर फैलता हुआ 'यश' एक खतरा है- वह लुभाता है, और अंततः लेखक को कहीं का रहने नहीं देता!'

'आशा बलवती है राजन!' किताब उनकी कविताओं की अंतिम प्रकाशित पुस्तकों में से है. मुझे यह सूचित करते हुए भी गर्व है कि यह संग्रह, जिन दो दिवंगत और दो जीवित लेखकों को नंद जी ने 'समर्पित' किया था: मैं अयोग्य होते हुए भी उनमें से एक हूं– यह मेरे

लेखकीय जीवन का शायद एक बहुत बड़ा संतोष है कि नंद बाबू की ओर से मुझे यह विरल स्नेह-सम्मान मिला! एक 'शत्रु-लेखक' के लिए यह सम्मान, असामान्य है!! जब तक ये किताब बची रहेगी– या हम, उनका यह 'समर्पण' हमेशा मुझे और विजेंद्र जी- दोनों को उनके अकुंठित प्यार की याद दिलाता रहेगा...

मुझे याद आता है– उन्होंने हमारी अब बंद हो चुकी पत्रिका 'कला-प्रयोजन' को भी न केवल एक लम्बा इंटरव्यू ही दिया था, बल्कि समय-समय पर इस पत्रिका को बराबर अपना रचनात्मक सहयोग भी. हम अपनी पत्रिका में बरसों तक कविताएं नहीं छापते थे, क्योंकि उसे सिर्फ गद्य की पत्रिका रहना था, पर जयपुर में हमने उनसे एक इंटरव्यू रिकॉर्ड किया और उनकी कविता 'किला' दुबारा सुनी तब अपने निर्णय पर हमें पुनर्विचार करना पड़ा ...'किला' कविता के बाद नंद जी की वजह से ही हमारे प्रकाशन में चुनिंदा कविताओं या कविता-अनुवादों को भी जगह मिलने लगी.

चितौड़ जिले में उनका ननिहाल था...बेडच नदी के किनारे जहां उनके पूर्वजों को जागीर का एक गांव 'मिश्र जी की पीपली' मिला था! उनका जन्म भी एक गांव– 'राव जी का पीपल्या' में हुआ था जो पहले झालावाड़ जिले में था– बाद में मध्यप्रदेश में चला गया ...मैंने इस कविता 'किला'को पहली दफा उन्हीं के मुंह से सुन कर इसे तुरंत पसंद किये जाने के सम्बंध में खुद से ये सवाल पूछा था– क्या करुणा भी इस कविता की पठनीयता या स्मरणीयता का बड़ा सूत्र नहीं है- सामंती-समाज के एक समय-विशेष में सारी बेबसी और हाहाकार का सच! विषाद की चमकती हुई कोर और संताप का छूटा हुआ सिरा जहां हमें साफ़ दिखलाई देने लगता है और दृश्य जो अतीत का होते भी आज भी हमें अपनी ऐच्छिक आत्महंता नृशंसताओं के चलते बरबस मथता है? हम कितनी ही चीज़ें इतिहास की इस धुंध से बरामद कर लेते हैं– आज़ादी और स्वायत्तता जैसे मूल्यों के लिए खून खच्चर से भरे युद्धों का ज़माना, सैन्य-विधवाओं की सामाजिक-हैसियत, युवा या किशोर ज़िंदगियों का ऐसा दारुण और कारुणिक अंत, और कर्मकांडों के उत्तरार्ध से झांकता- कवि-चेतना के कटघरे में खड़ा पूरा मध्यकालीन समाज? 'इतिहास सिर्फ मौत बतलाता है– बाकी बातें तो ज़िंदगी को खुद ही तलाश करनी पड़ती हैं...' इस कविता की आखिरी पंक्तियां हैं! जैसे इन्हीं में छिपा है– नंद बाबू की इतिहास-चेतना और समाज के बारे में उनके अपने कन्विकशन का बीज ....

'कला-प्रयोजन' में उनके किये विदेशी लेखकों के अनुवाद भी छपे, साक्षात्कार,

लेख, पत्र और कविताएं भी...'भारतीयता की धारणा' को केंद्र में रख कर जब पश्चिम-क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र के माध्यम से एक राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी आयोजित कर के पढ़े गए पर्चों को संकलित कर पत्रिका 'कला-प्रयोजन' का विशेषांक निकालने का विचार आया तो नंद बाबू ने हमारे आग्रह पर एक स्वतंत्र-आलेख फ़ौरन लिखा– 'भारतीयता की तलाश.

यह मूलत: उसी संगोष्ठी के लिए ही आकल्पित लेख था– जो बाद में उनके गद्य संकलन 'यह हमारा समय' में भी छपा. उन्होंने कहा था– यह बात तो कही ही जानी चाहिए कि आज के हम लोग लेखन को आनंद के साथ जोड़ते हुए कठिनाई का अनुभव करते हैं...और करेंगे भी, क्योंकि हमारे मन पर और सृजनशीलता पर अनेक प्रकार के दबाव बने हुए हैं. मेरा ख्याल है कि इस तरह के दबाव पहले साहित्य लिखने वालों के मन पर न रहे हों...जो व्यवस्था हमें मिली हुई थी उसके संदर्भ में हमारे पूर्वज लेखक कभी सशंकित या शंकालु कभी नहीं रहे. यह उनकी शांति का सब से बड़ा कारण था कि जो व्यवस्था उन्हें मिली हुई है वह एक तरह से उनके हिसाब से पूरी भी है और इसी में से उन्हें अपना सुख-दुख हासिल करना है. जीवन उसी में से आना है. आज का सबसे बड़ा सवाल तो यही है कि हमें जो व्यवस्था प्राप्त हुई है वह सुखकर है या नहीं, वह हमारे सपनों को सार्थक करने वाली है या नहीं, हमको समृद्ध करने वाली है या नहीं? हमारे सब से गहनतम प्रश्न व्यवस्था से ही टकराते हैं. उन्हीं से हमारी मुठभेड़ कराते हैं. दरअसल व्यक्ति और सरकार की, व्यक्ति और समाज की जिन किन्हीं मुद्दों पर लड़ाई है, वह भी एक निरंकुश व्यवस्था से मुक्त होने की ही है. ....' इससे साफ़ स्वप्न और भला क्या देखा जा सकता है?

जबकि नंद जी ने भारतीयता वाले अपने आलेख में लिखा था– 'भारतीयता के प्रसंग की सबसे जटिल-ग्रंथि तो उसको पहचानने की है. उन विशेषताओं को रेखांकित करने की, जो मौलिक हैं और संशय रहित हैं. पहचान के संकट को जानने के लिए हमें समाज के उस चित्त को ही जानना पड़ता है, जो समय की अनंत उथल-पुथल और अनिश्चयों के बीच, अपनी आस्थाओं और प्रतिज्ञाओं को नष्ट नहीं होने देता. हम हज़ारों प्रकार की स्मृतियों की छाया-आतप से गुज़रते हुए उस सम्पदा को इकट्ठी करते हैं, जिसे हम संस्कृति कहते हैं, और जो बाद में, हमारे समूह-चित्त के राग-द्वेष का निर्धारण करती है. राग ही की तरह द्वेष भी, संस्कृति के हिस्से की चीज़ है. ध्यान देने की बात है कि संस्कृति, अनुभवों की विराट शृंखला है, इसलिए उसमें पुनर्नवा होने या कुछ

विलुप्त होने की सारी सम्भावनाएं मौजूद हैं: मनुष्य, इसी तरह इसी पराक्रम में अपना समय और संसार बनाते हैं.'

नंद जी के गद्य की खासियत उसका ओढ़ा हुआ पांडित्य नहीं, बल्कि उसकी सहज, सरल विश्वसनीयता है. भाषा के सौंदर्य का जितना आकर्षण इस गद्य में सुलभ है– उसी अनुपात में लेखक की अपनी अविचलित आस्था और सामाजिक प्रतिज्ञा भी हमें निरंतर अनुभव होती है.

'अतीत-राग' पुस्तक में, मूलत: लोगों और जगहों के बारे में आत्मीय, अंतरंग संस्मरण संकलित हैं. ये लेख एक सहृदय कवि-मन पर पड़ी लोगों की छवियों का अनुस्मरण हैं– ये यादें अपने क़स्बे, परिवारजन और समकालीनों पर भी बड़े आत्मीय संस्मरणात्मक लेख हैं, जिनसे नए लेखक भी बहुत कुछ सीख सकते हैं. ये संस्मरण कहीं कहीं (संक्षिप्ति के बावजूद) अनेक व्यक्तियों के बारे में बहुत सधा हुआ, विश्वसनीय और अधिकृत विवरण देते हैं.

वह बड़ी भावुकताहीन, पर मार्मिक-सरलता से अपने पुराने ज़मानों की याद करते हैं.... संस्मरण-लेखक के रूप में नंद जी हमारे समय के शायद सबसे अधिक संस्मरणकारों में से एक थे. खुद उनके अनुसार– 'अतीत-राग' के आलेख किंचित भावुकता के साथ लिखे उन लोगों के स्मरण हैं, जिनकी स्नेह-छाया में मैंने अपनी ज़िंदगी को 'पुनर्वसित' करने की कोशिश की है. मैं आशा करता हूं कि उनकी मूल्यवान ज़िंदगियां, हमारे जीवन से संशयों की निरर्थकता का उच्छेदन कर सकने में मददगार साबित हो सकती हैं..' आप यहां लक्ष्य कर सकते हैं– संस्मरण जैसी विधा के भीतर भी वह एक सार्थक हेतु की तरफ इशारा कर रहे हैं....और वह हेतु या प्रयोजन है– हमारे जीवन से संशयों की निरर्थकता का उच्छेदन!

जीवित और समकालीन मित्रों पर संस्मरण लिखना शायद कुछ लोगों को जोखिम का काम लगता हो, और कुछ हद तक वह है भी, नंद चतुर्वेदी जी ने बिना संकोच अपने ऐसे कुछ दोस्तों पर भी लिखा– पूरे अपनत्व और गर्मजोशी के साथ.

'अतीत-राग' के आलेख किंचित भावुकता के साथ लिखे उन लोगों के स्मरण हैं, जिनकी स्नेह-छाया में मैंने अपनी ज़िंदगी को 'पुनर्वसित' करने की कोशिश की है.

नंद जी को याद करते मुझे यह भी सबसे ज़्यादा रेखांकनीय लगा, वह ऐसे अपवाद वरिष्ठ लेखक थे, जिन्होंने अपने से उम्र, यश, और कुछ हद तक 'प्रतिभा' में कनिष्ठ लेखकों तक को चर्चा, साक्षात्कार, या

भाषण में बेहद स्नेहपूर्वक याद रखा और उन पर, उनके बारे में, जब-जब मौका लगा– लिखा. अपने आलोचकों की परवाह के बिना ....इस मायने में नंद जी हमारे समय की कई प्रतिभाओं को आकृति देने वाले, उन्हें उत्साहित करने वाले उदारमना और निर्भीक लेखक थे. उनसे कई लोगों ने लम्बी लम्बी चर्चाएं की हैं और प्राय: हर साक्षात्कार में जहां जहां प्रसंग आया, उन्होंने अपने प्रांत में हिंदी लेखकों के बारे में भी टिप्पणियां भी दी हैं ....पर अनुराग जी का यह कहना ठीक है कि 'उनको एक दुख यह भी था कि राजस्थान के हिंदी लेखकों को वह सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं मिली, जिसके वे हक़दार थे!' कई बार मुझे शक होता है– नंद बाबू के समूचे साहित्य के मामले में भी तो कहीं ऐसा अनिष्ट नहीं हुआ? मेरा मानना है– नंद जी के समूचे महत्वपूर्ण लेखन को अखिल भारतीय हिंदी साहित्य की मुख्य आधुनिक धारा के प्रसंग में एक गुट-निरपेक्ष सर्जनशील समीक्षक की दरकार तब भी थी, और शायद आज भी है ....इसलिए कि उन्होंने सदा अपने समय के साथ यात्रा की थी और अपने कई दूसरे समकालीनों की तरह उन्होंने अपने गद्य और कविता– दोनों को कभी 'अप्रासंगिक' या 'अतीतबद्ध' होने न दिया, पर शायद दिल्ली या बम्बई जैसी जगह बैठ कर लिखने वालों और उदयपुर जैसी जगह में रह कर लिखने वालों की प्रचार-प्रसार सम्बंधी 'वेव-लेंथ' में फर्क रहता होगा!

उनकी गद्य-रचनाओं में हमारे समय, समाज और आधुनिक-सभ्यता की अनेक चिंताएं हैं. ये काल्पनिक या वायवी चिंताएं ज़रा भी नहीं- विगत और आगत के प्रसंग में एक विचारशील आधुनिक मनुष्य के अनेक वैध-संदेह और उलझनें, आप उनके गद्य-आलेखों में देख पाते हैं. वह जहां-जहां ज़रूरी है– एक आत्म-उत्तरदायी नागरिक की तरह कई तरह के ज़रूरी प्रश्न उठाते हैं और रचनात्मक हस्तक्षेप करते खुद एक स्वाधीनचेता विचारक की तरह इन सवालों का समाधान खोजना चाहते हैं. उनका सबसे याद रखने लायक हठ तो शायद यही है- नन्द बाबू ने अपने आरम्भिक छात्र-जीवन से ही जिस-समाजवादी अंतर्दृष्टि का विकास किया था– अंत तक प्राय: हर रचना में- चाहे वह गद्य हो या कविता, उस समतावादी विचारधारा का ईमानदार निर्वहन हम बराबर देखते हैं, हालांकि इसे कोई अंतर्विरोध नहीं कहा जाना चाहिए कि कई साक्षात्कारों में, अपनी पुस्तकों की कुछेक भूमिकाओं में, वह विचारधारा के स्तर पर समाजवाद के लगभग अप्रासंगिक होने का तथ्य ईमानदारी से स्वीकारते हैं.

नंद बाबू ने एक बार हम से बातचीत में कहा था– आज की नौजवान पीढ़ी तो ये कल्पना तक भी शायद नहीं कर सकती

कि सामंतशाही/राजाओं के शासन-काल में आम जनता को बेगार के नाम पर कैसे-कैसे अमानवीय और अपमानजनक त्रास झेलने होते थे! उन्होंने तब रोंगटे खड़े कर देने वाला वह किस्सा सुनाया था, जो उनकी नयी किताब 'जो बचा रहा' में 'अम्लान रोशनी की तलाश में' शीर्षक संस्मरण में आया है .

घटना का सार-संक्षेप ये है कि किसी अंगरेज़-गवर्नर को सर्दियों की एक रात को रेलगाड़ी से गुज़रना भर था, पर राजा के सिपाही अलसुबह उस गांव में आ धमके जहां से रेल की पटरी गुज़रती थी... नंद जी के नाना के मार्फ़त वे पुलिसिये गांव वालों को इस बात के लिए पाबंद कर गये कि गांव के सब लोग उस शाम नये कपड़े पहन कर पटरी के पास थोड़ी थोड़ी दूरी पर उलटे मुंह कर के पूरी रात खड़े रहें, कोई रेल की तरफ न देखे– यही नहीं, लोगों के सर पर गवर्नर की गाड़ी के सत्कार में लदे हंडों में रोशनी करने के लिए तेल रुई और बिनौले आदि भी पर्याप्त मात्रा में हों...लोगों को सर्दियों में पूरी रात खड़े इसलिए रहना ज़रूरी था कि सिपाहियों को खबर नहीं थी वह लाट सा'ब आखिर जा किस रेलगाड़ी से रहे हैं? नंद बाबू ने अपने इस संस्मरण का अंत बेहद मार्मिक और कारुणिक रूप से किया है. वह लिखते हैं–

'......सुबह चिड़चिड़ाते नाना ने बताया– रात में कई रेलें गुजरीं. उस पूरे जनांचल में जहां हज़ारों साल से अंधेरे और अकाल की ठंडी छायाएं पसरी पड़ी थीं, वहां गवर्नर की रेल को सुरक्षित निकाल देने के लिए अपार रोशनी जगमगा रही थी. मैं केवल अंधेरे में शृंगालिनी के उस रोने के बीच गांव के गरीब ब्राह्मण माफीदारों को अंगरेज़ गवर्नर के लिए रोशनी की सलामी देते हुए, उलटे मुंह खड़े रहने की कल्पना करता सो जाता. गांव में दुख कोई अलग सी चीज़ नहीं थी! एक ही घंटे में टिड्डियां खेतों को सफाचट कर गयीं थीं. देखते ही देखते एक बादल आया और पेड़ गंजे हो गये. गांव भूखों मरने लगा. दीपावली का दिन केवल फीकी रोशनी का उत्सव होता. सब जानते थे कि कल परसों और आने वाले दिनों की रातें ठंड और अंधेरे में कांपती रहेंगी.

अपने भयंकर दुस्वप्न जैसे इस मार्मिक संस्मरण का अंत नंद बाबू ने इन सकारात्मक पंक्तियों से किया है–

'.... मैंने जल्दी ही गांव छोड़ दिया लेकिन एक अम्लान रोशनी की तलाश में सारी ज़िंदगी काट दी. रोशनी की किरण आसानी से मिलती नहीं है. ज़िंदगी की हर सीढ़ी फिसलती हुई निस्तब्ध अंधेरे के मातम में डूबी रहती है, फिर भी आदमी है कि रोशनी, हंसी और दोस्ती

के सपने देखता है इन सपनों की ताकत से वह हर फिसलती सीढ़ी पर खड़ा रहता है और दुनिया बदल देता है.'

क्या ये पंक्तियां आशा के आसमान में उमंग की एक अनकटी पतंग नहीं हैं?

● ● ●

अपने संग्रह के पचासों खतों में से उनका एक पत्र आंशिक रूप से उधृत करते हुए अपनी बात समाप्त करूंगा– इसलिए कि इस खत में उन्होंने अपनी साहित्य-प्रेरणाओं को, और जीवन-दर्शन को भी यों ही सहजता से रेखांकित किया था–

'प्रिय हेमंत, आपका (या तुम्हारा, क्या कहूं– कुछ समझ में नहीं आता) मैंने एक मामूली लड़के की तरह, बिना किसी कामना के, कविता लिखना शुरू किया था, और देखा आपने– उसने मुझे आज कितना 'श्री-मान' बना दिया है! सचमुच बिना किसी कारण के मुझे आपकी आत्मीयता मिली है. मेरे लिए यह विरल ऐश्वर्य है.

दुनिया को मैंने किसी तात्विक-दृष्टि न देखा न समझा– जैसी मिली उसी में उलझा-उलझा रहा. उससे कुछ 'विमुक्त' होने का रास्ता 'लिखना' था– इसलिए लिखता रहा. लेकिन दुनिया कोई 'रोमांस' नहीं थी, वह विभाजित थी, वही त्रासदी, वही विभाजन समझ में आया. उसकी कविता की 'सर्जना' को, 'क्रियेटिविटी' को पहचानने की अदम्य आकांक्षा को विलुप्त नहीं होने दिया! निस्संदेह यह हज़ारों रूपों में फलवती होती रहती है. मैंने उसका एक रूप देखा, लेकिन दूसरे ने यदि दूसरा समुन्नत रूप, तो मुझे कुछ बुरा नहीं लगा. 'सर्जनात्मकता' वैयक्तिक स्वाधीनता है. दिल्ली से अभी-अभी आयी पुस्तक भेज रहा हूं. ये समय-समय पर लिखे आलेख हैं. किसी गहन 'तत्ववाद' पर केन्द्रित नहीं हैं. केवल दुर्विनीत समय की त्रासदी का सरल वृत्तांत हैं. मैं अभी एक और कविता-संग्रह तैयार कर रहा हूं– 'आशा बलवती है राजन!'

आज के कठिन और दुर्निवार दौर में, उनके जैसे दृष्टिवान रचनाकारों के हर लिखे और कहे शब्दों का स्थापत्य बनाए जाने की ज़रूरत है ...ये ज़रूरत वर्तमान संस्कारहीन समय में, अब और शिद्दत से सामने आ रही है. नंदजी के भौतिक सान्निध्य से हम सब लोग वंचित ज़रूर हैं– पर मुझे भरोसा है- इस सब के बिना भी एक उत्सुक रचनाधर्मी, बेहद प्रभावशाली-वक्ता, श्रेष्ठतर कवि, दृष्टिवान-सम्पादक, शानदार गद्य-शिल्पी और उन जैसे जीवंत साहित्यिक-व्यक्तित्व की उपस्थिति की, याद इस नगर में और प्रकारांतर से हिंदी साहित्य में सदा बची रहेगी!

(नंद जी की 95वीं जयंती के अवसर पर स्मृति-व्याख्यान के सम्पादित अंश)

धारावाहिक उपन्यास

(अंतिम किस्त)

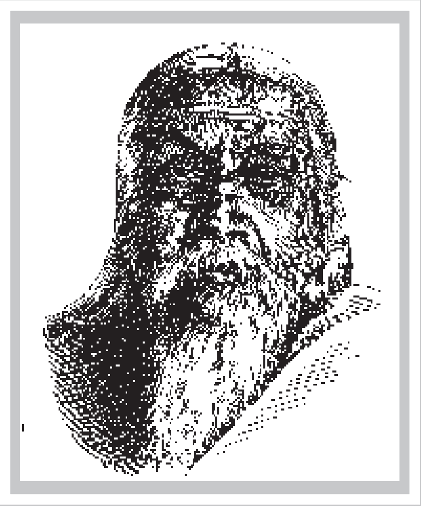

योगी अरविंद

● राजेंद्र मोहन भटनागर

अचानक समय को झपकी लग गयी. वह हड़बड़ाकर उठा. चारों ओर देखा. फिर आंखें मलीं और हैरानी से सारी दुनिया को देखा. दुनिया कहां से कहां पहुंच गयी है और वह कितना पीछे रह गया. क्या वह आगे निकली दुनिया को पहचान सकेगा? जिसके साथ उसने सांस नहीं ली, दौड़ा-भागा और सुस्ताया नहीं, लंगड़ी नहीं डाली, चित्त को संभाला-सजाया नहीं! ओह!

सिद्धि दिवस आया और गया. 24 नवम्बर, 1950 को मेला जुड़ा. भक्त आये. दर्शन हुए. आशीर्वाद के लिए हाथ दोनों के उठते रहे. मां मीरा मुकुट पहने हुए साक्षात् देवी लग रही थीं. और वो देवपुरुष.

सन्नाटा, पसरकर आंखें फाड़े देखता रह जाता. उसे अपने को घूरते हुए बहुत अजीब-सा अनुभव होता. अरविंद ही कहते, 'हमारे बाद यह दर्शन मेला भी दूसरे दर्शन मेलाओं की तरह कुछेक के मन का आस्वाद बनकर रह जाएगा और उन्हीं की टीका-टिप्पणियों का शिकार होगा, जो हमारे सामने हो रही हैं. मैं ऐसी किसी परम्परा को अपने पीछे छोड़कर नहीं जाना चाहता, जिससे व्यापार का रास्ता खुल जाए. ऐंठना शुरू हो और श्रद्धा पर सवा मन का बोझ आ गिरे, और उसका कचूमर ही निकल जाए. ...श्रद्धा को बनाये रखना है तो ऐसी परम्पराओं से अपने भक्तों को बचाना हमारा कर्तव्य हो जाता है जो वातावरण को स्वस्थ बनाये रखने की बजाय उसे गंदा, बोझिल और उपेक्षा योग्य बनाते हैं.'

मीरा बहुत धीरे-से इतना ही कह पायी, 'है तो यही सच. परंतु पूरा सच नहीं है, अरविंद. सच यह भी है कि इस बहाने उनको प्रेरणा मिलती है, जिनसे आप धरती को स्वर्ग बनाने की आशा करते हो. धरती पर स्वर्ग बिना इसके आयेगा भी कैसे? उनको प्रेरणा कहां से मिलेगी?'

'ऑरोवील से– तुम्हारी उषा नगरी से, मीरा, तुम अंतर्राष्ट्रीय नगर बसाने का स्वप्न देखती हो ना.'

'पता नहीं, अरविंद, स्वप्न सच भी होते हैं या... अभी तो उसका कुछ अता-पता नहीं है.'

'तुमने सोची है, पचास हजार जन के लिए व्यवस्था करने की बात. औरोवील के पूर्व में सागर हिलारें लेगा और उत्तर-पश्चिम में झीलों का स्तब्ध जल. ...सारी मानव जाति का स्वप्न है, मीरा. एकता का अंतर्राष्ट्रीय प्रयास. चिरयौवन का मादक स्वप्न!' अरविंद का हृदय गद्गद हो रहा था. वे बहुत प्रफुल्ल थे.

'आपका आशीर्वाद बना रहेगा तो यह स्वप्न भी मानव जाति को आपसे उपहार में मिल सकेगा.'

'मेरे से.'

'स्वप्न भी आप ही उगाते हैं, अरविंद. आपका सूक्ष्म शरीर मेरे अंतस् की गहराइयों में उतर जाता है. बदले में स्वप्न बिखेर जाता है. उनमें से मैं कुछेक स्वप्नों को संजोकर रख पाती हूं. ...मुझे नहीं लगता, अरविंद, मैं तुम्हें कुछ-कुछ जान भी पायी हूं या...'

'ऐसा क्यों लगता है, मीरा? ...मुझे तो नहीं लगता है. ...कुछ भी नहीं.'

'आपको ईश्वर का सान्निध्य मिला है, अरविंद, लेकिन मुझे...'

'हां-हां कहो, मीरा, तुम्हें क्या?'

'सब मानते हैं कि मैं आपको पूरी तरह जानती हूं. भौतिक रूप से, प्रत्यक्ष में, ऐसा बहुत कुछ है भी परंतु अंदर से...'

'अंदर से क्या, मीरा?'

'फिर कभी, अरविंद.'

'फिर कभी नहीं आता, मीरा. जो है आज है, अब है, उस पर इत्मीनान करो. भविष्य दूर है, कितना दूर है, कुछ पता नहीं.' अरविंद का हृदय पिघल रहा था.

'यही कि मैं आपको आज तक अंदर से नहीं जान पायी.'

'क्या जानना चाहती हो, मीरा?'

'शायद यह भी मैं आपके सामने आकर भूल जाती हूं. कई बार अपने मन को पक्का किया कि आज पूछकर रहूंगी परंतु आपके सामने आने पर वह कुछ भी याद नहीं रहा.' मीरा अपने को समेटती हुई कहती.

'मनुष्य के पास स्वप्न नहीं होते तो वह कितना निर्धन होता कि निर्धनता को भी उस पर शर्म आ जाती. मीरा, जब मनुष्य स्वप्नों की सार्वभौमिक दुनिया को सजाने की ओर प्रयत्न करने के लिए उत्सुक हो उठता है तब मानस की ऐसी स्थिति होती

है कि उसकी स्वप्नाकांक्षाएं दूसरे के सामने आने से कतरा उठती हैं. ...मीरा, हर व्यक्ति के साथ ऐसा होता है कि वह सर्वप्रिय के सामने आते ही पूर्णतया समर्पित हो जाता है.'

'शायद अरविंद.'

'समर्पण अनन्य भक्ति है, मीरा. उसमें मैं शून्य स्थिति में पहुंच जाता है. फिर कुछ पूछने को बचता ही नहीं है. पूछने का घेरा तर्क तक सीमित है. सत्य तर्कातीत है. समर्पण उस तक पहुंचने की पहली और अंतिम शर्त है. ...तुम्हें याद है मीरा, जब तुम बिना फाउंटेन पेन खोले कॉपी पर कुछ लिखे जा रही थीं और मैं तुम्हें घूर रहा था. अचानक मेरी दृष्टि तुम पर पड़ी. तुम संकोच से भर उठी. तुम्हारी आंखें लजा रही थीं. कदाचित् पूछ रही थीं कि मैं यों क्या देख रहा हूं. ...मैंने पूछा, 'ज़रा पढ़कर सुना सकती हो, यदि गोपनीय न हो तो कि तुमने क्या लिखा है?' ...और वह बेतरह से झेंप गयी, क्योंकि फाउंटेन पेन तो बंद था, फिर लिखा क्या? ...ऐसा होता है, मीरा जब व्यक्ति समाधि की ओर मुड़ने लगता है.' आज अरविंद में बतरस मुखर हो उठा था. मुद्दतों बाद उनमें यह कमनीय आकांक्षा घूंघट उठाकर बाहर देख रही थी. वह याद कर रहे थे, 'मीरा, उस दिन तुम मेरे कमरे से गयी. यह सोचकर गयी थी कि अभी ध्यान का समय नहीं हुआ है और नीचे साधक प्रतीक्षा में बैठे हुए थे. और तुम अपने कमरे में शायद कमर सीधी करने के लिए लेटी ही थी कि तुम्हारी समाधि लग गयी. बेचारे साधक रात्रि के एक बजे तक तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे रहे. जब मुझे यह सब ज्ञात हुआ तब मैंने साधकों को लौट जाने का आदेश दिया.... तुम्हारी समाधि टूटी. तुम सीधे नीचे आयी. वहां कोई नहीं था. चकित हुईं. तब मैंने कहा था, 'मीरा, अब तो दिन उगने वाला है! ...तब तुम्हें अफसोस हुआ था.'

'हां, अरविंद.'

'मैंने कहा था इसके लिए अफसोस करना ठीक नहीं है, मीरा. तुमने इस सारे परिसर को बदलने का प्रयास शुरू कर दिया है. बहुत कुछ बदल रहा है. उसके साथ एकाग्रता नहीं बदली. वह बदलने लगती तो जो कुछ नज़र आ रहा है, वह दिखलाई नहीं पड़ता. एकाग्रता जब विविधता में प्रकट होने लगती है, तब ऐसा ही होता है.' अरविंद ने धीरे-धीरे कहा.

'आप नीले जल का प्रयोग कर रहे हैं न?'

'हां, मीरा. नीला जल औषधि से लाभ है. हालांकि आंखें कमज़ोर हो चुकी हैं तथापि इस औषधि ने दृष्टि को और कमज़ोर नहीं होने दिया है.' अरविंद इतना कहकर द्वार की ओर देखने लगे जैसे उधर से कोई आने वाला हो.

'परसों तिरुचिरापल्ली आकाशवाणी की टीम आने वाली है. वह गांधीजी की मृत्यु

पर दिये गये आपके साक्षात्कार की बहुत तारीफ कर रहे थे.'

'मीरा, सवाल तारीफ़ करने का नहीं है. मुख्य सवाल उनके दीर्घकालीन अहिंसा के प्रयोग की सफलता का है, जो बाद में हिंसा के रौद्र रूप में सामने आयी.' अरविंद की दृष्टि अपने पर लौट आयी थी. उन्हें जम्हाई आने लगी थी.

मीरा ने घड़ी की ओर देखा. वह अवाक् रह गयी. इतनी रात. छोटी सुई एक से आगे थी और बड़ी सुई पांच पर थी. वह खड़ी हो गयी. उसने कहा, 'आज तो बातों में इतने मशगूल हो गये कि समय का ध्यान ही नहीं रहा.'

'तो अच्छा ही हुआ मीरा. बहुत दिनों बाद हम इतने नज़दीक आ सके वरना तो नज़दीक आने का समय ही कहां मिल पाता है.' अरविंद इतना कहकर मीरा को जाता हुआ देखते रह गये. उनका सोच थककर एक कोने में सिमट आया था.

● ● ●

4 दिसम्बर, 1948 की सुबह कुछ अनूठी थी. सुनहरी और शांत थी. सुबह वे तड़के सागर तक हो आये थे. तब सागर सोया पड़ा था. वे कह रहे थे, उदार, तुमने बहुत काम किया है. मेरे लिए सागवान की चारपाई बनायी, शीशम की लकड़ी से कई चीज़ें बनायी, उनकी बराबर देखरेख की, उन पर मोम की पालिश की.

'ये तो कुछ नहीं है. मुझ पर आपकी करुणा वर्षा बनी रहे, मेरे लिए यह महत्त्वपूर्ण है.'

वे लौट आये. चुपचाप गये थे. सागर उनकी धड़कनों में हिलोरें लेता था. उनके काव्य के मन को खोलता था.

आज उन्हें पुराणी, चम्पकलाल, डॉ. सान्याल, डॉ. मणिलाल, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. बेचरलाल, मूल शंकर और नीरदवरण की याद आ रही थी. ये सब उनके परिवार के सदस्य थे.

आज वे अकेले ही बने रहना चाहते थे. परंतु उनकी सेवा में जो लोग थे, उन्हें बुला-बुलाकर बड़े प्यार-स्नेह से देखा. देखते रहे. अंत में कहा, 'तुम लोग सदा प्रसन्न रहो.'

अचानक उनके सामने प्रे आ खड़ी हुई. वह पूछ रही थी, 'सब कुछ ठीक-ठाक है, अरविंद.'

'ठीक-ठाक से मतलब?'

'जीने का लक्ष्य अरविंद.'

'हां, जीने का लक्ष्य मैंने समर्पण में पाया है, प्रे. ...श्रद्धा-भक्ति का गठबंधन समर्पण की ओर ले जाता है. समर्पण आकांक्षाशून्य होकर सर्वस्व त्यागने का दूसरा नाम है.'

'तुम्हें संतोष है.'

'मेरे प्रभु को संतोष है.'

'पक्का.'

'मैं कच्चा-पक्का नहीं जानता प्रो. प्रे. ...मैं कुछ जानना भी नहीं चाहता.'

'वह तो तब भी तुम्हारा स्वभाव था जब तुम स्टूडेंट थे कि जानते थे लेकिन जानने का श्रेय नहीं लेना चाहते थे. मुझे पहली बार तुम्हारी भक्ति का तब पता चला था जब तुमने अपनी कविताओं के लिए अपने को नहीं; उन परिस्थितियों को श्रेय दिया था, जिनके बीच वे लिखी जा सकी थीं. ...अब तो तुम सावित्री जैसा महाप्रबंध लिख चुके हो. उसके लिखने में तुमने सालों साल लगा दिये.'

'शायद मुझे पूर्णता की तलाश थी.'

'पूर्णता तो तुम्हें आज भी अनुभव नहीं हो रही है.'

'प्रो. प्रे, यह तुम्हारा ही कहना है कि पूर्णता कोई चीज़ या भाव नहीं होता. पूर्णता मात्र दिशा है, चलते जाने की और रुकने के प्रमाद को पास नहीं फटकने की. पूर्णता पर गिद्ध दृष्टि रहेगी तो आगे चलकर वही पूर्णता का यह अनुभव करा सकेगी कि उसे पूर्ण होना है अत: विराम नहीं. ...फिर तुम ही बताओ प्रोफेसर, मुझे इन परिस्थितियों में क्या कहना चाहिए?'

'अरविंद, तुम योगीराज हो, सत्य के निकट हो, ईश्वर को सुनते रहते हो.'

'फिर?'

'जो बताना-जताना होगा, वही तुम्हें बता-जता सकेगा, अरविंद. ...मैं तो तुम्हें नमन करने आयी हूं. उसे स्वीकारो.'

'प्रोफेसर, तुम आज भी मेरी आचार्य हो, नमन करने का अधिकार मुझसे मत छीनो.'

'तुम फिर जीत गये, अरविंद.'

'मैं जीत-हार नहीं समझता, प्रोफेसर प्रे.'

'तभी तो तुम सदा जीतते रहे हो, अरविंद. यही एक प्रोफेसर का अपने शिष्य के प्रति नमन है. नमन में छोटे-बड़े का भेद नहीं रहता, अरविंद वह श्रद्धा का भाव है. ...अच्छा, मैं अब चलती हूं, तुम्हें अभी और भी काम निपटाने हैं.'

मीरा आ गयी. उनकी आंखें चारपाई पर लेटे हुए अरविंद पर जा टिकीं. अरविंद गहरी सुषुप्ति में थे. डॉक्टरगण बता चुके थे कि मूत्र विष संचार की गति ने ज़ोर पकड़ लिया है. ऐसी स्थिति में मरीज़ चेतना में नहीं लौट सकता.

मीरा ने देखा. डॉक्टरगण भी देख रहे थे कि अरविंद मीरा को देखकर ईषद् स्मित-भर ठहरे रह गये. उनकी दृष्टि उन पर से हटी नहीं.

मीरा को याद आ रहा था कि एक वर्ष पूर्व उन्होंने उनसे कहा था, 'कोई भी शक्ति चाहे उसकी निर्मिति उसने ही क्यों न की हो, प्राकृतिक नियमों को अनदेखा नहीं कर सकती– स्वयं ईश्वर भी.'

'इसका अभिप्राय यह हुआ, जो मैं अनुभव भी करने लगी हूं कि मुझे अपने को समेट लेना चाहिए. यही उपयुक्त समय है.'

'समय को उपयुक्त अनुपयुक्त में मत

बांटो, मीरा. तुम्हारी यहां ज़रूरत है. ...और यदि रूपांतरण आवश्यक ही हो गया तो तुम नहीं... कदापि नहीं, मैं जाऊंगा.’

‘आप क्यों?’

‘क्योंकि आपको अतिमानसिक अवतरण और रूपांतरण योग पूरा करना है.’

‘वह आप करेंगे.’

‘असम्भव मीरा. वह तुमसे ही होगा. ...मैं अस्वस्थ हो चला हूं. मैं अपने साथ जबर्दस्ती नहीं कर सकता. हम तुम दो नहीं, एक हैं और ईश्वर की इस अन्यतम सृष्टि के लिए हैं, जिसे स्वर्ग में बदलना है. स्वर्ग के लिए कहीं बाहर जाना नहीं है. वह यहीं है, इसी धरा पर, मनुष्य को यह करिश्मा कर दिखाना है.’

‘लेकिन, अरविंद.’

‘आगे कुछ नहीं मीरा. सहजता से वरण करो, दायित्वों को वहन करो. आपकी ज़िंदगी का यह अपरिहार्य अंग है.’

‘आप अपने रूपांतरण की बात नहीं करेंगे.’

‘मोह नहीं, मीरा. मैं बात नहीं कर सका तो कौन करेगा! ...याद है न, हमने कहा था कि विश्वास एक अंतर्ज्ञान है जो सत्य प्रमाणित होने के लिए मात्र अनुभव की अपेक्षा नहीं करता बल्कि अनुभव तक पहुंचा देता है. ...हमें वही प्रयत्न करते जाना है. ...और कुछ नहीं, मीरा.’

डॉ. वी.सी. सान्याल पूछ रहे थे, ‘कैसा लग रहा है?’

‘सब आनंददायक.’

‘रोग जो है.’

‘आनंद के लिए. मैं अब तक आनंद ही तो तलाशता रहा हूं, डॉक्टर सान्याल.’

‘फिर भी, दवा तो लीजिए.’

‘कौन-सी दवा दोगे डॉक्टर अब.’ कहकर अरविंद ने डॉक्टर सान्याल की ओर अर्थभरी दृष्टि से देखा. डॉक्टर सान्याल स्तब्ध रह गये.

अरविंद पुनः सुषुप्ति में चले गये. मीरा ने पूछा, ‘आप डॉक्टर क्या सोचते हैं?’

‘वे मूर्च्छा में हैं, मां!’

‘यह कैसी मूर्च्छा है, डॉक्टर महोदय जो रोगी को आंख खोलने की थोड़ी-थोड़ी देर बाद अनुमति दे रही है. बीच-बीच में वे पानी भी मांग रहे हैं. कुछ देर पहले उन्होंने पूछा था कि समय क्या हुआ है?’

‘क्या कहें, मां! ऐसी स्थिति पहली बार सामने आयी है कि मूर्च्छा भी है और चेतना भी. उनकी असाधारण आकांक्षा शक्ति को मूर्च्छा रोक नहीं पा रही है जबकि उनके रक्त में वह विषैला द्रव्य पूरी तरह फैल चुका है जिसे हमारे गुरदे सामान्यतया बाहर

ऐसी स्थिति पहली बार सामने आयी है कि मूर्च्छा भी है और चेतना भी. उनकी असाधारण आकांक्षा शक्ति को मूर्च्छा रोक नहीं पा रही है जबकि उनके रक्त में वह विषैला द्रव्य पूरी तरह फैल चुका है.

निकाल देते हैं.'

'अब आगे, डॉक्टरगण?'

'मेडिकल साइंस फेल है. अरविंद एक-दो दिन के मेहमान हैं.'

'शुभ-शुभ बोलें, डॉक्टर.'

'डॉक्टर यथार्थ को अस्वीकार नहीं करता.'

'परंतु यथार्थ भी तो ऐसा है कि...'

'प्रकृति का नियम है, मां, और हर जीव पर लागू होता है. इससे कोई बच नहीं सकता. हमें इस कठोर सत्य को मानना ही पड़ता है. ...आप देख रही हैं कि उन्हें सांस लेने में भी कठिनाई हो रही है.'

मैं इन निरीह आंखों से देख रही हूं, डॉक्टर. इसके साथ ही मीरा के सामने वह दृश्य आ गया, जब वह और डॉ. सान्याल बहस कर रहे थे और अरविंद नीची निगाहें किये, मंद-मंद मुस्कराते हुए सुन रहे थे.

मीरा कह रही थीं, 'डॉक्टर, हमारा दिमाग मात्र फास्फोरस, कार्बन और लोहे की निर्मिति मात्र नहीं है, उससे आगे भी...'

'मेडिकल साइंस अभी तक यह मानती है, मां!' डॉ. सान्याल ने कहा और डॉ. सत्येंद्र की ओर देखा.

'मेडिकल साइंस से भी आगे साइंस है, डॉक्टर.'

'ज़रूर है पर खोज प्रमाणित होने पर वही भी मेडिकल साइंस का हिस्सा बन जाती हैं.'

'कितने तार और पत्र आते हैं. यह उन लोगों के होते हैं जो रोगों की चपेट में आ चुके हैं. इलाज कराकर थक चुके हैं लेकिन उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ.'

'हां, मां, मैं साक्षी हूं, मैंने गुरुदेव को उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते देखा है. वे ठीक भी हुए और उन्होंने तार द्वारा आभार भी प्रदर्शित किया.'

डॉक्टर सत्येंद्र, मेडिकल साइंस और क्या प्रमाण चाहती है?

'आप प्रमाण किसे मानते हैं?' ...प्रयोग-सिद्ध स्थापनाओं से आप क्या बताना चाहते हैं कि उससे आगे कुछ नहीं है.

'नहीं मां, हमारे यहां अंतिम कुछ नहीं है.'

'फिर योग को आप क्या मानते हैं?'

'अंधविश्वास नहीं, मां! वह भी एक सार्थक साधना है, परंतु वह मेडिकल साइंस का स्थान नहीं ले सकती, मां! ...मैं स्वयं योग से प्रभावित हूं, तभी तो कलकत्ता छोड़कर यहां आता रहता हूं. निश्चित ही योग से मन एकाग्र होता है. एकाग्रता से सक्रियता बढ़ती है. स्वेच्छा से संयम आता है. संयम से नियंत्रण की पकड़ गहरी और तीव्र होती है परंतु मधुमेह ठीक नहीं होता.'

'इसका मैं प्रमाण हूं, डॉ. सान्याल. मैं मधुमेह से ग्रस्त हूं और तुम्हारी बतायी टेबलेट बराबर लेता रहा.' पुन: अरविंद ने ही कहा, 'डॉक्टर, सच यह भी है कि मेरे

पास जिनके तार या पत्र आते हैं, वे रोगग्रस्त तो होते ही हैं, साथ में दुखी भी बहुत होते हैं, उनके लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना कर देता हूं कि प्रभु, उन पर कृपा करें. उन्हें दुख-दर्द से मुक्ति दिलायें. इससे आगे मैं नहीं जानता. फिर मैं उनके बीच में नहीं होता हूं. यदि उनके और ईश्वर के बीच कोई तार जुड़ पाता है तो इसे भी मैं नहीं जानता. मैं तो प्रत्येक व्यक्ति से कहता हूं कि वह अपना सम्बंध ईश्वर से बनाने का प्रयास करे. ईश्वर बहुत, बहुत कृपालु है.'

'गुरुदेव, आपका चित्त उदात्त है, आप कर्मयोगी हैं और ईश्वर की आप पर कृपा है. आप कुछ भी कर सकते हैं परंतु कुछ भी नहीं करते. पत्थर पड़ते रहे परंतु आप शांत, स्थिर और मौन बने रहे, साधना में तल्लीन हुए.' डॉ. सान्याल कहने लगे अपने लम्बे बालों पर हाथ फेरकर.

'पानी...पानी...पा...नी.' स्वर उठा सरकता हुआ.

सब चौंके. मीरा ने आगे बढ़कर अरविंद को चम्मच से पानी पिलाया. कुछ पानी ढुला भी. कुछ कंठ के नीचे तक उतरा.

'क्या कुछ उम्मीद की जा सकती है, डॉ. सान्याल. वे मूर्च्छित अवस्था में अवश्य हैं परंतु उन्हें चेत भी बराबर बना हुआ है.' मां ने कुछ सोचकर और अरविंद की ओर देखकर कहा.

'यह सब भी मूर्च्छा में ही है.' डॉ. सान्याल ने कहा.

'नहीं, डॉक्टर सान्याल, मूर्च्छा में चेतना की शून्य अवस्था होती है. मां, ठीक कह रही हैं.' डॉ. सत्येंद्र ने तपाक से कहा.

'मैं अपनी जगह पर सुदृढ़ हूं, डॉ. सत्येंद्र.'

'क्या समझूं मैं, डॉक्टर द्वय.' मीरा बोलीं.

डॉ. सत्येंद्र डॉ. सान्याल की ओर देखते रहे. अंततोगत्वा डॉ. सान्याल ने ही साहस दिखलाया और धीमे-से कहा, 'थोड़ी ही देर में आप देखेंगी कि उनकी देह का रंग बदलकर काला पड़ना शुरू हो जाएगा.'

'तो भारी, अनर्थ होगा, डॉ. सान्याल. इससे दुनिया को क्या संदेश जाएगा. हे कृपालु परमेश्वर, तू उनकी रक्षा करना. उनकी हिरण्यमय देह काली नहीं पड़नी पाये. वे तो तेरे अनन्य भक्त हैं. तेरे ही आदेश की शत-प्रतिशत पालना करते रहे हैं. तेरी ही कृपा से उनको सब सर्व-सम्मति से हिरण्यमय पुरुष कहते हैं.' मीरा का हृदय द्रवीभूत हो उठा. उनके नयन करुणात्व भर लाये. उनके अरुण होंट कांप उठे.

मूर्च्छा फिर टूटी. अरविंद ने पूरी आंखें खोल दीं और अपने चतुर्दिक् देखा. कुछ-कुछ पहचाना. उनके अधरों पर ईषद् स्मित की बारीक रेखा खिंची रह गयी.

सन्नाटे का सब्र टूटा. उनकी पलकों ने संकेत दिया कि चेतना लौटने वाली है. उनके शांत और गम्भीर मुख-मंडल पर शतदली उजास फैलता जा रहा है.

अरविंद के मुख-मंडल पर और उजास फैला. स्वर्णिम वलय और विस्तृत तथा गहरा होता जा रहा है.

'बहुत व्यथा सता रही है, स्वामी.'

'तुम मृणालिनी.'

'हां हम, स्वामी, मृणाल की मृणालिनी.'

'नहीं, मृणालिनी, व्यथा तो रत्ती-भर नहीं है. क्यों हो! जो उसका है, वह उसे समेट लेना चाहता है. समेटे, हमें क्या?'

मृणालिनी उनके सिर पर हाथ फेरने लगी. उन्हें अतीव सुखानुभूति हुई. वे पूछ रहे थे, 'तुम अभी तक प्रतीक्षा कर रही हो, मृणालिनी?'

'तो क्या करते, देव? हम तो तुम्हारी कुंदन देह की छाया ठहरे. छाया का स्व क्या है? कुछ नहीं, ना. तो फिर?'

'हमें तो कुछ पता ही नहीं चला, मृणालिनी.'

'आपको तब पता चलता जब हमें कुछ पता होता. मामूली मलेरिया था. तेज़ ज्वर आया. सारी देह कांप उठी. कम्बल पर कम्बल हमारे ऊपर डाल दिये. कंपकंपी लज्जित हो उठी. डॉक्टर अंकल ने आश्वासन दिया, 'चिंता की कोई बात नहीं. स्थिति काबू में है.' और थी भी क्योंकि हम टुकुर-टुकुर सबकी ओर देख रहे थे. पिताजी हमें पांडिचेरी जाने का सरकार की मोहर लगा आज्ञा-पत्र दिखला रहे थे. हमारी आंखों के सामने तब आप थे. अब क्या था. हम पूर्णतया निश्चिंत हो बैठे! हमारा पति कोई साधारण व्यक्ति नहीं है– पूर्ण सिद्धि प्राप्त महापुरुष है. हम अपने को वाइसराय की पत्नी से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझ बैठे. क्यों न समझ बैठते–साधना पति की सफल हुई थी और फल उसका हमें मिलना ही था–पत्नी होने के नाते. फिर बेचारी मौत किस खेत की मूली! उसकी बिसात ही क्या!...लेकिन हाय रे दुर्दैव! वर्षा पिछली पहाड़ी पर मूसलाधार हुई और नाला हमारे पास से पुरज़ोर से गुजरा! हम एड़ी रगड़-रगड़कर उन्हें मलूक कर रहे थे कि नाले के रेले में संभालने का हमें मौका भी नहीं मिला कि हम बहने लगे. बहते गये. और आखिर, देव, अति विश्वास धोखा दे गया. धोखा हमेशा अति विश्वास ही देता है.'

'हमने आपको देखा तक नहीं; मृणालिनी.'

'अब तो देख रहे हैं, देव.'

'हां, मृणालिनी.'

'अब हम धोखा नहीं खा सकेंगे. आप हमारी महीन कामवाली, रेशमी साड़ी देख रहे हैं– एकदम गुलाबी रंग की.'

'तुम इसी साड़ी में हमारे साथ आयी थी.'

'उस फूलदार गुलाबी साड़ी के पल्लू में बंधा हुआ ताली का गुच्छा देख रहे हो.'

'हां, तो?'

'तो क्या! इस बार हम तुम्हें ताली के गुच्छे की तरह अपने पल्लू में बांधकर

अपनी पीठ पर डाल लेंगे. फिर देखते हैं कि कौन-सी सिद्धि-विद्धि है जो हमारे से तुम्हें छुड़ा ले जाएगी.’

अरविंद के चेहरे पर उजास दुगुना हो उठा. मीरा कहने लगी, ‘डॉक्टर, देख रहे हो, उनका रंग और देदीप्यमान हो उठा है चांदनी में नहाये सद्यः गुलाब-सा. नया-सा ताज़ा-ताज़ा.’

‘हां, मां, देख रहे हैं.’

‘फिर तुम्हारी मेडिकल साइंस क्या कहती है?’

दोनों डॉक्टर चुप. समय आहिस्ता-आहिस्ता गुलाब की पंखड़ियों पर पांव रखता-सकुचाता हुआ संभल-संभलकर आगे बढ़ा.

अरविंद के सामने मीरा आल्फासा आ खड़ी हुई. इकहरी देह की मालिका, खिलते गुलाब की मादक-सी देह लिये, टेनिस के कपड़ों में, हाथ में रैकिट लिये. बहुत खुश. आंखों से चमक उछालती और देह सौष्ठव की कामना के मंत्र पढ़ती. ग्रंथों के सूत्र बांचती—सर्वम् योगिनीमयं जगत्. यानी जगत का सकल आकर्षण, प्रकाश और संगीत मानो एक दिव्य-योगिनी की ही अन्यतम छवि एवं गुणों का ही प्रकाशन है. उन दिनों उनका घर-आश्रम टेनिस का मैदान हो गया था. कभी वे टेनिस की चैंपियन हुआ करती थीं. तब पढ़ती थीं. अब वे एक घंटे टेनिस खेलती थीं. टेनिस की गेंद पर उनका ऐसा नियंत्रण था कि वे जहां चाहें, वहां उसे डालती थीं, वह भी पूरी शक्ति से, भरपूर तेज़ी से. काश! वे उसी रूप में दौड़ भी पातीं. उम्र धीरे-धीरे अपने अधिकार चुपचाप वापस लेने लगती है.

...हमारा उद्दिष्ट एकमात्र यही है कि परस्पर विरोधी तत्त्वों में समरसता जन्मे और समूचा जगत् विकासशील समन्वय को अपने चरित्र से अभिव्यक्त करे.

‘लगता है कि तुम पूरे दमखम से खेलकर आ रही हो, मीरा.’ अरविंद टेनिस के वस्त्रों और चेहरे की गुलाबी रंगत को लाली में बदलता पाकर कहते.

‘हां, अरविंद. वहां तन-मन का ऐक्य देखते ही बनता है. सारा तन हल्का-फुल्का मन एकदम एकाग्र और फुर्तीला. आलस्य का नाम नहीं.’

‘हो तुम लगन की पूरी पक्की. सागर की उत्ताल तरंगों का मुंह फेरने के लिए बनवायी फौलादी दीवार. फिर बना टेनिस कोर्ट और दर्शक गैलरी.’

‘उसके लिए आदमी भी आपने खोज कर दिया था, अरविंद—कोर्ट विशेषज्ञ. वह आदमी क्या था, साक्षात् संकल्पी पुरुष. एक पल इधर, न एक पल उधर, सुनिश्चित समय पर आकर कहा, ‘कृपया कोर्ट का मुआयना कीजिए.’

‘क्या तैयार हो गया.’

‘उद्‌घाटन की प्रतीक्षा में वह आप सबका इंतज़ार कर रहा है.’

‘हैं! जादू, अरविंद, जादू... तुम्हारे बंगाल के जादू की तरह का जादू–’

‘तुमने बंगाल का जादू कहां देखा है, मीरा.’

‘वही तो देख रही हूं, अरविंद. क्या उससे बढ़कर भी कोई जादू हो सकता है!’

अरविंद झेंप से गये. उनकी आंखें नत हो गयीं. वे देख रहे थे कि मीरा में एक साथ ज्ञान, बल, ऊर्जा और सौंदर्य की महाशक्तियां व्यक्त हो उठी हैं. वे ही महेश्वरी हैं और वे ही महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती. समर्पण उनकी साधना है, राधा-भाव उनकी आत्म-स्वीकृति का मौन संकेत.

वे पूछ रही थीं, ‘क्यों डॉ. सत्येंद्र, आज दवा ली?’

डॉ. सत्येंद्र चुप बने रह गये.

‘दूसरों को न्याय का परामर्श देने वाले, देव, यह क्या हो रहा है? अपने पर अन्याय किस लिए?’

‘क्या तुमसे बड़ी भी कोई दवा हो सकती है, मीरा.’

मीरा ने रैकिट को कसकर मुट्ठी में पकड़ लिया. अब? महाप्रश्न उनकी कोर्ट में था और वह रिटर्न का प्लेसिंग देखकर जहां खड़ी थी, वहीं खड़ी रह गयीं.

मेघ शावक घिर-घिर आये. उनके बरसने के आधार बनने लगे. प्यार सदा पगला क्यों जाता है? सीमाएं निर्बंध क्यों हो उठती हैं? सवालों के लघु इंद्रधनुष सहज क्यों हो जाते हैं? सम्बंध की त्रिवेणी में हर बार सरस्वती क्यों अदृश्य हो जाती है? सपने विश्वास के साक्षी क्यों बनने लगते हैं?

नीलाभ्र गूंज उठा. गूंजता ही रहा. विराम फिसल गया. अल्प-विराम ने अर्द्ध-विराम के कुहनी मारी धीरे-से और पूछा, ‘क्या अब भी रुकने का विचार है?’

अरविंद के होंठ हिले. मीरा के हाथ से रैकिट छूट गया. उन्होंने उसे उठाया नहीं. वे कुछ कह रहे थे. मीरा उसको समझना चाहती थी. परंतु स्वर बिखर गये.

मीरा ने फिर ध्यान से देखा. उनकी खुली देह का रंग तेजस्वी था. मौन चपला की चमक लिये. उनकी आंखों में अपूर्व ज्योति थी. नथुने कुछ-कुछ फूले थे. उनका सौंदर्य किसी ध्यान-मग्न तपस्वी-सा दूर-दूर तक चांदनी मुक्त धूप की उजास का अवगुंठन उठा रहा था. क्या वे रूपांतर के कार्य को सुकर बनाने का मंत्र पढ़ रहे हैं?

वे कह रहे हैं, ‘मैं कहीं नहीं जा रहा हूं. मैं यही हूं. ...यही हूं... यहीं हूं.’

केवल मीरा सुन रही थीं. क्या अतिमानस अवतरित कराकर वे नवल सृष्टि का मंत्र पढ़ रहे हैं? नीरोग काया, निश्चल मन और आत्मा के उल्लास की ओर वे संकेत देकर कह रहे हैं, ‘जीवन की स्थापना

यही है. उसका सुफल भी यही है. आगे जाओ, वरण करो. मैं यहीं हूं बिल्कुल तुम्हारे पास. केवल हाथ बढ़ाने की देर है. मेरा कार्य यहीं तक था कि मानव जाति के लिए रूपांतर का द्वार खोल आऊं. ...अतिमानस को अवतरित करवाकर नवल मानव संसृष्टि का स्वप्न है, मीरा, तुम्हें पूरा करना है ताकि हर क्षेत्र में दिव्य की अनुभूति हो सके.'

'मैं, अरविंद, नहीं...नहीं मैं तुम्हारे बिना...' मीरा के स्वर बिखर उठे.

'क्योंकि तुम महालक्ष्मी हो. तुममें महासरस्वती विराजमान है. तुम महेश्वरी हो. तुम्हें ज़रा भी परेशान नहीं होना है. तुमसे कहीं अधिक शक्तिशाली सत्ता इस क्षेत्र में सक्रिय है.'

'परंतु अरविंद.'

'ठहरो, मीरा, वासुदेव रथ लिये इधर ही आ रहे हैं. पहले मुझे उन्हें नमन कर आशीर्वाद ले लेने दो. याद रहे, तुम्हारी सब क्रियाएं उन्हीं की शक्ति से सक्रिय और संचालित हो रही हैं. ...हमारा उद्दिष्ट एकमात्र यही है कि परस्पर विरोधी तत्त्वों में समरसता जन्मे और समूचा जगत् विकासशील समन्वय को अपने चरित्र से अभिव्यक्त करे.'

'हां...हां... अरविंद, यह तो सब स्मरण है.'

'तो, मीरा, तुम भी सुन लो, मुझे दिये गये उसके अमर उद्घोष को और तसल्ली पा लो. वह कह रहा है, धरती-आसमान, चांद, तारे, दसों दिग्-दिगंत, सम्पूर्ण ब्रह्मांड साक्षी है, मैं अपनी सकल सत्ता और सकल शक्ति के साथ तब तक यहां हूं जब तक यह धरा रूपांतरित नहीं हो जाती. ...सुना तुमने, मीरा.'

'हां, सुना मेरे देव. सब सुना और तुम ललक-भरी दृष्टि से वासुदेव के रथ में बैठकर चले जाओगे. ...तब...अरविंद मैं कुछ नहीं कर पाऊंगी. क्या कभी तुम्हारे बिना मैं कुछ कर पायी हूं जो आगे करने की तुम मुझसे आशा लगाये हो.'

'मीरा, मैं कहां जा रहा हूं. मुझे वासुदेव को नमन कर उनसे यह वरदान लेना है कि वह मुझे यहीं रहने दें– इस धरा पर. मैं अपनों के बीच में रहकर, उस महकते स्वप्न को पूरा करूं, जैसा मैंने अपनों को आश्वासन दिया था, यही धरा स्वर्गधाम बनेगी.'

'कृतार्थ हुई, अरविंद, मैं कृतार्थ हुई.' मीरा ने सजल नेत्रों में हर्षानुराग लिये, प्रणत मुद्रा में अति कम्पित स्वर में कहा.

'और मैं स्वामी!' मृणालिनी का स्वर गूंज उठा.

'तुम मेरे में, मेरे कण-कण में समाविष्ट हो रही हो, मणि. तुम मुझे अपनी साड़ी के पल्लू में बांधे रखना चाहती थी ना... मैंने तुम और मैं का वह सारा झगड़ा ही समाप्त कर दिया. अब तो प्रयत्न हो कि अब से हम द्वय नहीं, सम्पूर्ण ऐक्य होकर इस पावन

धरा-धरती पर वासुदेव का नाम स्मरण करते हुए श्रद्धा-भक्ति के सुमन की वृष्टि करते रहेंगे.'

'जैसी आपकी इच्छा, स्वामी. मैं तो आपके साथ हर स्थिति में, हर दृष्टि से सम्पूर्ण हूं.'

परिदृश्य बदला. डॉ. सान्याल सुन रहे थे, 'सान्याल, पानी...पा...नी...'

मीरा ने व्याकुलता को संयमित कर डॉ. सान्याल से पानी भरा गिलास हाथ में लिया और एक चम्मच उन्हें पानी पिलाया ही था कि उनकी आंखें स्तब्ध स्थिर हो गयीं. मीरा ने कहा, 'डॉक्टर.'

डॉक्टर सान्याल आगे बढ़े. नब्ज़ टटोली और काफी देर तक नब्ज़ टटोलते रहे.

'क्या हुआ, डॉक्टर.'

'वही, मां, जो वासुदेव की इच्छा थी.'

'विराट् की साक्षी मैं...' मीरा इतना ही कह पायी.

अब यह वही कमरा था, जहां उन्होंने दो दशक तक आध्यात्मिक प्रयोग किये थे साधारण, सादगी से संयुक्त परंतु विशेष आभा से आलोकित...ज्योतिर्मय. चंद्र की लोनी जुन्हाई और सूर्य का सौम्य उजास का वह अमृतोत्सव देदीप्यमान हो रहा था.

अरविंद की सौरभावंठित और हिरण्यमय-परिमल काया आनंद निमग्न थी. उनके चैतन्य का अलौकिक आभा-मंडल समस्त दिग्-दिगंत को द्युतिमान कर रहा था. उनका चौड़ा, उठा हुआ ललाट विमल कांति से द्विगुणित हो रहा था. उनके चांदनी से दमकते हुए लम्बे केश, कमल नयन, सुदृढ़ अरुणाधरों पर गहरी आत्मीय सस्मित, निर्मल दाढ़ी का निर्झर, आरती-सा पुनीत और कमनीय मुख-मंडल प्रशांति के अंक में ब्रह्मानंद-सा प्रतीत हो रहा था. बलिष्ठ चौड़ा स्कंध प्रदेश, चौड़ी समुन्नत छाती और विराट् की अक्षय अनुभूति का समन्वय अति उन्नतावस्था का दिग्दर्शन करा रहा था. हर क्षण लगता था कि वे अब उठने वाले हैं.

मीरा और कितनी प्रतीक्षा करती. अंततोगत्वा प्रतीक्षा की भी कोई सीमा है. वह ज़री के किनारे वाली धवल रेशमी चादर लेकर आगे बढ़ी. उनके सामने आकर रुकी रही. देखा. देखती रही– उस देवपुरुष, की सुदीर्घ भुजाओं को एक ओर झुका हुआ, ऊर्ध्व मानस का सुनहला प्रकाश द्वीप और सार्वभौम अस्तित्व की अंतर्प्रतीति. लगता रहा कि वे कहने वाले हैं, 'तुम चाय लिये चुपचाप आ खड़ी होती हो– अपने आने की आहट तक नहीं होने देती. पता नहीं, कब से खड़ी हो.'

क्या बोलूंगी. क्या कोई सम्मोहनावस्था में अपना ध्यान रख पाता है, अरविंद... आप नहीं जानते वे क्षण मेरे में कैसे निर्झर बन उतरते जाते हैं.

'जैसी, तुम्हारी इच्छा, मीरा.'

'और आपकी कुछ नहीं क्या?'

'क्यों होगी, मीरा! सब तो उसको सौंप

दिया है. कुछ रखा नहीं है अपने पास. रखने को फिर रह क्या जाता है? शेष-अशेष सब एकमएक हो जाते हैं. ...मीरा, यह जीवन उसका है, उससे है और उसके निमित्त है. ...तुम उसके इसी सुनहरे पथ की अकेली ऐसी यायावर हो जो अनुभूति में और अनुभूति से परे दोनों में एक साथ विद्यमान रहती है.'

'मां, चादर उढ़ाइए.' पुराणी का अति मद्धिम स्वर था. मीरा ने भरपूर दृष्टि से उन्हें देखा. प्यार उमड़ पड़ा. हृदय कांप गया. अधर खुले के खुले रह गये. उन्होंने प्राणपण से उस देव पुरुष को प्रणत भाव से नमन किया. उनके कमल नयनों के कोरों में मौक्तिक अम्बु आ ठहरे. चींटी की गति से वे आगे बढ़ीं और ज़री के किनारे वाली उस रेशमी चादर की ओर स्नेह से देखा, फिर कुछ मन-ही-मन मंत्र-सा पढ़ा और उस चादर से पांव से लेकर स्कंध प्रदेश तक उनकी कंचन काया को ढक दिया. स्मृति के कमल द्वीप प्रणाम कर उठे. सुघड़ता सौरव बन छा गयी.

एक सौ ग्यारह घंटे की वह मौन और सुषुप्त यात्रा सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी. 5 दिसम्बर, 1950 से निरंतर चल रही यह यात्रा अपने आप में अलौकिक थी. उनकी स्वर्णिम काया अहर्निश द्युति से द्युतिमान होती चली गयी. मकरंदमयी हो उठी. डॉ. सान्याल, डॉ. मणिलाल और डॉ. सत्येंद्र उन दो फ्रांसीसी डॉक्टरों के साथ अचम्भे में थे. सारे परीक्षण कर डाले. आश्चर्यचकित बने रहे. न उनकी पुनीत स्वर्णिम काया का कहीं से रंग फीका पड़ा और न कोई अन्य ऐसा संकेत उभरा, जिससे उनके अस्तित्व का अवसान माना जा सके. वे सम्पूर्ण तेजोमय थे, ज्योति दीप्त!

दर्शनार्थी आते जा रहे थे. वे भीगे नयन से प्रणिपात कर रहे थे. शतदल खिला हुआ था प्रतिदिन की तरह.

सामने शीशम का आदमकद बक्सा रखा हुआ था. उस बक्से पर रेशम तथा चांदी परतवाला अस्तर चढ़ा हुआ था.

सन्नाटा और गहराया. प्रकाश प्रकम्पित हुआ. उस हिरण्यमय देव पुरुष को आहिस्ता से उस बक्से में उतारा. कोई धार्मिक नियम अनुष्ठान नहीं हुआ. वे समाधि स्थल में चिर शांति निमग्न हो गये.

हवाओं के पंखों पर शांति पाठ के अंतर्लीन मंत्र निःस्वन गति से विलुलित होते रहे. सागर नम नयनों से ठिठका हुआ स्थिर रह गया. मीरा परछाईं-सी हिली, फिर रुकी और मुड़कर देखा. उनको संदेह हुआ, वे पुकार रहे हैं, 'ठहरो, मीरा, मैं भी साथ चलता हूं.' मीरा ने मुड़कर देखा, वहां महाशून्य निःस्तब्ध हुआ चिर निद्रांक में शिशुवत् मुस्करा रहा था. वे गतिशून्य हुईं धीरे-धीरे आगे बढ़ती गयीं, फिर पीछे मुड़कर उन्होंने नहीं देखा.

(समाप्त)

व्यंग्य

जाने वाले हो सके तो लौट न आना

● शशिकांत सिंह 'शशि'

माननीय महोदय 2020, आपकी विदायी की बेला में मन गद्गद हो रहा है. आंखें खुशी के आंसुओं से सराबोर हो रही हैं. आखिरकार आप जा ही रहे हैं. आपकी छाया भी जाते-जाते चली ही जायेगी. अहा! वह दिसम्बर की कड़कड़ाती ठंड जिसमें आपका आगमन हुआ, ढोल-नगाड़े बजे, पटाखे छोड़े गये तब किसे पता था कि आगे थाली पीटने की नौबत आने वाली है.

साल क्या शुरू हुआ, शाहीन बाग का आंदोलन समाने आया. नागरिकता का आधार आदमी नहीं कार्ड हो गया. धर्म का पैमाना बनाकर छलनी लगायी गयी ताकि देशभक्त छन-छनकर गिर सकें जिन्हें नागरिकता देकर सत्ता का पक्कीकरण किया जा सके. मामला इतना हिट हुआ कि देश में दो तरह के ही नागरिक रह गये देशभक्त और देशद्रोही. दोनों के राशनकार्ड और आधारकार्ड मीडिया वाले बना रहे थे. न्यूजरूम के स्टुडियो में बैठकर सड़क पर ठिठुरते महिलाओं और बच्चों को गालियां सप्लाई की जाने लगीं. औरतें शाहीन बाग में जुट गयीं, मर्द बयानबाजियों में. बंद कमरे में बैठे बुद्धिजीवी हाय-हाय करने लगे, आधे इनके पक्ष में, आधे उनके पक्ष में. सोशल मीडिया में फोटो चस्पा करके, नाखून कटाने वाले लोग भी शहीद कहलाने लगे. क्रांतिकारी बनने का आसान नुस्खा था, शाहीन बाग जाकर रूई से छाती पीटते ही बंदा क्रांतिकारी बन जा रहा था. नागरिकता के साथ-साथ दिल्ली का चुनाव भी मुद्दों की मांग कर रहा था. चूंकि भारत में चुनाव किसी को जिताने के लिए नहीं किसी को हराने के लिए आयोजित किये जाते हैं सो दलबल लेकर सभी दल कूद पड़े मैदान में. चुनाव क्या आये, गली-नुक्कड़ पर अदालतें खुल गयीं. देशद्रोही का तमगा जो चाहे जिसे पहना दे, नारे लगवाये जाने लगे–गोली मारो सालों को.' नारों और जुमलों से ही चुनावों की शोभा बढ़ा करती है चुनांचे अब सुनने वाला बुरा नहीं मानता, जोक ऑफ द डे मानकर खुश होता है. वह दिन गये जब मीर साहब भेढ़ें लड़ाया करते थे, लोग नेताजी की बकचोंची और टीवी डिबेट को 'उच्च स्तरीय बकवास' का सम्मान देते हैं.

शोबाजी से देश महान बनता है यह

एकबार फिर सिद्ध हो गया जब महामना ट्रंप अपने दलबल के साथ भारत पधारे. आगे-आगे नबाव साहब पीछे-पीछे हुक्का. जहां थूकें वही पीकदान, यूं कहिए कि आगे पानदान पीछे पीकदान. गरीबी छुपाने के लिए दीवार खींच दी गयी, गरीब तो छुपे ही रहते हैं, बस ज़रूरत थी गरीबी को छुपाने की सो दीवार खींचकर मान लिया गया कि आलासाहब को नहीं दिखा. उन्हें देखना भी नहीं था, एक दुकानदार अपने ग्राहक से मिलने आता है तो वह डिमांड और पेमेंट देखता है, पजामा और नाड़ा नहीं. तभी किसी विघ्नसंतोषी ने कह दिया कि एक बीमारी चीन से निकल पड़ी है, वह भारत में आना ही चाहती है. उसे घुड़क दिया गया कि भारत की शांति और सभ्यता को देखकर ही बीमारी अंदर नहीं घुस पायेगी. हमारी रगों में दौड़ता है गंदे नाले का पानी, क्या बिगाड़ लेगी बीमारी. वीर रस से सने लोगों का देश है, वायरस का साहस ही नहीं होगा अंदर घुसने का.

चीन के नाम पर बीन बज ही रही थी, तभी आ गयी बीमारी जिसके बारे में तुलसीदास जी ने बहुत पहले कह दिया था– 'कवि कोविड कह सके कहां ते, अर्थात कोविड के बारे में कहने का तजुर्बा कवियों तक में नहीं है. कोविड आया और बंद हो गया देश. कहा तो गया कि तीन सप्ताह अंदर रहें तो वायरस बेचारा घूम-टहलकर वापस चला जायेगा, मगर लॉकडाउन पर लॉकडाउन होता गया और भय की खेती होती रही. सत्ता-रस के कवि सत्ता के गुण गाने लगे कि देखो दूसरे देशों में मरे बीस हमारे यहां केवल दस. वाह रे हम, का नारा दिया जाने लगा. जनता चीखती रही कुछ 'करोना' कुछ 'करोना'. सरकार ने कहा ठीक है तो पीट लो थाली और छोड़ दो अपने हिस्से का वेतन. अक्लमंद लोग पीतल की और मूरख कांसे की थाली पीटने लगे. बंदों को कहा गया कि बंदी में हाथ साफ करते रहें और देशहित में अंदर रहें लेकिन पेट से परेशान, मजदूर निकल पड़े पैदल. उनकी नौकरियां साफ हो गयीं, राशन साफ हो गया, नकद-गहने सब साफ हो गये, बस साफ नहीं हुए तो हाथ. मकान-मालिक देशद्रोही था, किराया मांगने लगा. बनिया उधारी छोड़ने को राजी नहीं था. बंद कमरे के बुद्धिजीवी कोसते रहे कि कोरोना बढ़ेगा लेकिन मरने के दो ही विकल्प देखकर मजदूरों ने अपने गांवों में मरने का विकल्प चुना. मरने वाले मजदूरों का आंकड़ा सरकार रख नहीं पायी क्योंकि रोने का अभियान चल रहा था, नहीं तो मुआवजों की लम्बी फेहरिस्त हो जाती. एक लाख मरीज होने पर जो रेल चलायी गयी उसे उस समय चलाना सम्भव नहीं था क्योंकि तब केवल बीस हजार ही मरीज थे. मां अपने बच्चे को गोद में लेकर निकल पड़ी तो गर्भवती मायें भी निकल पड़ीं. आपदा में आतंक का व्यापार भी

किया जा सकता है इसे सिद्ध करने के लिए मीडिया 'बचो-बचो, चीखने लगी. हालात ऐसे पैदा कर दिये गये कि सबको लगने लगा– यह आया कोराना और वह गये हम. भय तो तब थमा जब मरने वालों की संख्या एक लाख हो गयी. आतंकित मजदूर भागने लगे, फटे पांव, खून से लथपथ कपड़े और बगल में बच्चा. सरकार अपील जारी करती रही कि जो जहां है वही रहो लेकिन लोग भागे जा रहे थे, कई सरकारें बस भेजकर मजदूरों को बुला रही थीं तो कहीं-कहीं सुशासन इतना अधिक था कि मजदूरों को बुलाने से मना कर दिया गया.

आपका वर्ष राजनीतिक रूप से 'अमर प्रेम' का वर्ष रहा है. समाज में चाहे कितनी भी दूरी बढ़ रही हो लेकिन राजनीतिक दलों में प्रेम की लहरें उठने लगीं थीं. आम आदमी बेशक चेहरा ढके घूम रहा था लेकिन राजनीति पूरी तरह बेनकाब हो गयी. अपना हाथ साफ करने की बजाये विरोधी दल के विधायकों पर हाथ साफ किये जाने लगे. कांग्रेस के नेता कमलाये जा रहे थे. भाजपा के नेता उन्हें हाथो-हाथ लेकर, गले लगाने को विकल थे. मध्यप्रदेश ने साबित कर दिया कि कारोना वायरस से निपटने से अधिक ज़रूरी है, राज का ताज उचकना. हाथ से निकल कर कमल पर जा विराजने वाले नेताजी ने दल बदलने की नयी मिसाल कायम की और कुर्सी प्रेम को नयी बुलंदियों पर पहुंचा दिया. जनता ने जिन्हें उंगली पर कालिख लगाकर हटाया था, वही मुंह पर कालिख लगवाकर दूसरे दल की शोभा बढ़ाने लगे. दल बदल को नये कैरियर के रूप में मान्यता मिल गयी क्योंकि दिल्ली दिल से इस रोजगार को हवा दे रही थी. भले लोग अपने विधायकों के लेकर कंदराओं और खाइयों में छुपने लगे लेकिन खरीदार हवा का रुख देखकर ही भांप लेते थे. कोरोना-काल में विधायक और सोने के दाम बेतहाशा बढ़े क्योंकि दोनों ही आम आदमी के काम के नहीं हैं.

मीडिया ने इस साल फिर सिद्ध कर दिया कि आदमी अगर ईमान से गिरे तो पाताल भी रोक नहीं सकता. पत्रकार नेपथ्य में चले गये और चारण-भांट माईक लिये सत्ता-स्तुति गाने लगी. मंदिर की नींव पड़ी और राजशाही का बदला लोकशाही से ले लिया गया. भला हो कचहरी का जिसने बाद में यह भी बता दिया कि मस्जिद जो गिरी थी और जिसको गिराये जाने की ललकार सबने सुनी थी, उसे तो किसी ने गिराया ही नहीं था. मस्जिद गिराने के आरोपी अपनी छाती ठोंकते रहे लेकिन उन्हें शहीद होने का मौका नहीं मिला. मीलार्ड ने बताया कि वास्तव में मस्जिद को अराजक तत्वों ने गिरा दिया. देश के भर के अराजक तत्व वहां एकत्र किये गये थे ताकि अनहोनी को होनी में बदला जा सके.

किसान बिल आया और किसान सड़क

पर आ गये. जैसी कि परम्परा है कि चुनाव न हो तो सरकार किसानों पर लाठियां चलवाती है सो लाठियां चलीं, तभी सत्ता में साझेदार पार्टी को अचानक याद आया कि वह तो किसानों की पार्टी है. वह सत्ता की मलाई छोड़कर वोटरों को मक्खन लगाने निकल पड़ी. सरकार ने शोध करके जान लिया था कि किसानों की परेशानी का एक ही कारण है– 'खेती'. खेती की जड़ में हैं खेत, यदि खेतों पर कम्पनियों का कब्जा हो जाये तो बेचारे किसान कितनी आसानी से मजदूर हो सकते हैं. एक बार मजदूर हो गये तो किसानों की आत्महत्या का मामला भी सुलझ जायेगा क्योंकि आत्महत्या किसान करते हैं, मजदूर नहीं. मजदूर एकबार नहीं मरता रोज थोड़ा-थोड़ा मरता है. उन्होंने समस्या की जड़ ही साफ़ कर दी. लेकिन किसान अपने हक के लिए रोड पर आ गये अर्थात राजनीति करने लगे. टी.आर.पी. किसानों में न देखकर बेचारी मीडिया 'रिया-रिया' करके रिरियाने लगा. बहस के केंद्र में थीं मायानगरी की देवी जी जिन्होंने नेता-अभिनेता सबसे पंगे लिये. नायक की 'हत्या या आत्महत्या' नामक कथा का वाचन मीडिया इतने प्रेम से करने लगा कि कोरोना का वायरस आत्महीनता का शिकार हो गया. मरीजों की संख्या बढ़ने लगी, मरने वालों की संख्या में उछाल हुआ लेकिन क्या मजाल कि पत्रकार महोदय अपने लक्ष्य से ज़रा भी टस से मस हो जायें. चैनल पर अदालत लगाकर नायक की हत्या या आत्महत्या का मुकदमा चला रहे थे. तभी खबर आयी कि पत्रकार महोदय जो जज बनकर भारत की ओर से सवाल पूछ रहे थे खुद कठघरे में जा खड़े हुए क्योंकि टी.आर.पी. उगाहने का मामला निकल पड़ा था. यूं तो भाई साहब कपड़े फाड़कर चिल्लाते थे और कई बार टीवी फाड़कर बाहर आने की कोशिश भी कर चुके थे, लेकिन टी.आर.पी. नामक जो आब-ए-हयात थी वह हासिल नहीं कर पा रहे थे तो उन्होंने मुर्गी मारकर अंडा निकालने की तरकीब लगायी और पूरी भैंस पानी में प्रस्थान कर गयी.

इसी गहमा-गहमी में सीमाओं पर मामला गर्म रहा. चीन हमें उकसाता रहा लेकिन हम उकसे नहीं. चीख-चीखकर न्यूज चैनल का एंकर चीन को धमका रहा था. एंकर के वश में होता तो टैंकर लेकर चीन चला जाता. फेसबुक और ट्विटर के बुद्धिजीवी बहुत कड़ी मेहनत कर रहे थे. पर अंत में सेना की वीरता ही काम आयी और मामला टलता दिखा.

अत: हे श्री 2020 ! ये आना भी कोई आना है, आये और रुला के चले गये. सादर अलविदा, आपकी कृपा हम पर अब न बने और आप लौटकर हमारी गलियों और चौबारों में अब न आयें. आपको मंगलकामनाएं. ❑

दुनियाभर में उपयोग की जानेवाली संपूर्ण वैज्ञानिक किट

किट : रु 1000 – आरोग्यवर्धक टॉनिक खुराक + किट

किट : रु 300 – आप ही अपने उद्धारक भाग 1,2,3 + 20 यूरिन टेस्ट पट्टी + टॉनिक भस्म

- 100 ऐकड़ा वीसा जाति ने 1500 किट का ऑर्डर दिया।
- एड्स के उपचार में भी सहायक है।
- शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाती है।

जब शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तब रोग मिटता है। रोग तो शरीर ही मिटाता है, दवा तो केवल रोग को मिटाने में आनेवाली बाधाओं को दूर करती है।

रोग : थैलेसीमिया, एड्स, टीबी, कैंसर, पथरी, पेशाब संबंधी रोग, हृदय संबंधी रोग आदि।

Sarla Pandit, Dena bank, Canal Road branch, Rajkot
A/c no. 019610002161
IFSC Code : BKDNO310196

पैसा भेजने के बाद अपना परिचय एवं पता भेजें या एसएमएस करें।

थैलेसेमीया, एड्स, टीबी, कैंसर के रोगियों को 1000 रुपये की किट मुफ्त बाँटी जाएगी।

अब तक स्वबचत का 2 करोड़ रुपया राष्ट्रीय कार्य हेतु प्रदान किया गया है

तन मन धन से राष्ट्रीय आरोग्य के लिए समर्पित

डॉ. हर्षद पंडित
M.V.Sc (Medicine) ● मोबाईल : 9428299637
''ॐ'' 4, करणपरा, राजकोट - 360 001 (गुजरात)
Email : drharshadpandit@gmail.com
www.rejuvenatewithoutmedicine.com

सांझा पीर

● डॉ. नरेश

सिख मत और सूफी मत के पारस्परिक सम्बंध की चर्चा मैं एक शेर से शुरू करता हूं. यह शेर उस शायर का है, जिसने अपने बारे में कहा था, 'मन ब्राह्मणज़ादा रम्ज़-आशना-ए-रूसी-ओ-तबरेज़ अस्त.' (मैं ब्राह्मणों की संतान हूं और रूमी तथा तबरेज़ के रहस्यों से भी परिचित हूं). वेदों-उपनिषदों का संस्कार लेकर सूफी मत के ज्ञाता बनने वाले कवि डॉ. इकबाल ने बाबा नानक के विषय में कहा था–

फिर उठी आख़िर सदा तौहीद की पंजाब से
हिंद को इक मर्दे-कामिल ने जगाया ख्वाब से

इस शेर में तीन संकेत निहित हैं. प्रथम संकेत शेर के पहले शब्द 'फिर' में मौजूद है कि भारत सदा से ही तौहीद अर्थात एको ब्रह्म द्वितीया नास्ति का उद्‌घोष करता रहा है लेकिन बाबा नानक के समय तक आते-आते यह देश कर्मकांड के चक्कर में पड़कर तौहीद के दर्शन को भूल चुका था और लोक-परलोक के उन सपनों में खो गया था, जो उनको ब्राह्मणवाद दिखा रहा था. समाज का मिथ्यात्व में निमग्न होना द्वितीय संकेत है. तृतीय संकेत यह है कि एक मर्दे-कामिल (सम्पूर्ण मानव) ने भारतीय समाज को उसकी गहरी-निद्रा से जगाया. यह मर्दे-कामिल थे– नानक.

मैं समझता हूं कि डॉ. इकबाल ने यदि बाबा नानक पर कविता न भी लिखी होती तो इससे न बाबा की महानता को कुछ फर्क पड़ना था, न इकबाल की लोकप्रियता को लेकिन 'शाहीन' की कल्पना के द्वारा इकबाल को जिस महामानव की तलाश थी, वह व्यक्तित्व इतिहास के पन्नों पर और लाखों श्रद्धालुओं के दिलों में मौजूद था तो इकबाल उसकी उपेक्षा कैसे कर सकते थे.

सिख मत और सूफी मत का आपसी रिश्ता तो इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि गुरु नानक ने स्वयं बाबा फरीद के बारहवें उत्तराधिकारी शेख इब्राहीम के पास जाकर बाबा की 'वाणी' प्राप्त की थी, जिसे बाद में गुरु अर्जन देव ने गुरु ग्रंथ साहिब में सम्मिलित किया था. पीर बुड्‌ढन शाह और गुरु नानक की कतिपय गोष्ठियां भी इन दोनों मतों के बीच आत्मिक सम्बंध होने की पुष्टि करती हैं.

सिख मत और सूफी मत का आंतरिक

सम्बंध उस समय खुलकर सामने आ जाता है, जब सूफी संत मीरां भी उस दिन पश्चिम के स्थान पर पूर्व-मुख होकर नमाज़ अदा करते हैं, जिस दिन पटना में गुरु गोविंद सिंह का जन्म होता है. विस्मित शिष्यों को इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि आज पूर्व में परमात्मा का नूर अवतरित हुआ है. अगले दिन वे अपने कतिपय शिष्यों को साथ लेकर पटना की ओर चल पड़ते हैं. पदयात्रा करते हुए जब वे पटना पहुंचते हैं तो गोविंद इक्कीस दिन के हो चुके होते हैं. वे बालगुरु के दर्शन करना चाहते हैं. परम्परानुसार नवजात शिशु को चालीस दिन तक प्रसूतिगृह से बाहर नहीं लाया जाता था परंतु बालगुरु के मामा कृपाल चंद साधुओं के श्रम एवं अनुग्रह के सम्मानार्थ शिशु को बाहर लाकर परम्परा तोड़ देते हैं. सूफी संत के हाथ में मिट्टी के दो सिकोरे हैं. एक में पानी भरा है, दूसरे में दूध. उन्होंने शिष्यों को बता रखा है कि यदि बालक दूध वाले सिकोरे पर हाथ रखेगा तो वह बड़ा होकर हिंदुओं का गुरु बनेगा और यदि पानी वाले सिकोरे पर हाथ रखेगा तो मुसलमानों का पीर बनेगा. मामा की बाहों में से उचकर शिशु एक साथ दोनों सिकोरों पर हाथ रख देता है. आनंदविभोर होकर सूफी संत घोषणा करते हैं कि यह हिंदू-मुसलमान दोनों का 'सांझा पीर' होगा.

दोनों मतों का प्रगाढ़ स्नेह सम्बंध इस घटना में भी स्पष्ट है कि पीर बुड्ढन शाह ने पहाड़ी राजाओं के विरुद्ध युद्धरत गुरु गोविंद सिंह की सहायता के लिए अपने 700 भक्तों, 2 भाइयों और 4 पुत्रों को भेजा था, जिनमें से 2 बेटे, एक भाई तथा कतिपय शिष्य हताहत हुए थे.

सिखों और सूफियों का अंतः सम्बंध उस समय अपनी पराकाष्ठा को जा पहुंचता है जब अमृतसर के हरि मंदिर की नींव रखने के लिए हज़रत मियां मोर को आमंत्रित किया जाता है.

सूफियों और सिखों के परस्पर सम्बंधों से आगे चलें तो दोनों के दर्शन में भी काफी समानता दिखाई देती है. धर्मांध शासकों के हाथों फांसी के तख्तों पर झूलने और इस्लाम-विरोधी करार दिए जाने के बावजूद इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि सूफियों का कल्मे पर अटूट विश्वास था. कल्मा इस्लामी दर्शन का मूल है. कल्मे का पूर्वार्द्ध 'ला इलाह इल्लिलाह' अर्थात 'एको ब्रह्म द्वितीया नास्ति' है. इधर गुरुवाणी ब्रह्म को 'एक ओंकार' घोषित करती है. गुरुवाणी के अनुसार ब्रह्म 'कर्त्ता' है, 'निर्भय' है, 'निर्वैर' है. सूफियों का ईश भी 'लाशरीक' है, 'लामहदूद' है. 'अकाल स्तुति' में अहंकार से मुक्ति के लिए उसी प्रकार 'एक ओंकार' को मन में बसाने का उपदेश दिया गया है, जिस प्रकार सूफी कल्मे पर ईमान दृढ़ करने का उपदेश देते हैं.

‘एक ओंकार’ की दार्शनिक पृष्ठभूमि यह है कि गुरु नानक ने ‘ओंकार’ से पूर्व ‘एक’ लिखकर सृष्टि के अस्तित्व को स्वीकार किया है. सिफर या जीरो शून्य का प्रतीक है. इसलिए गुरु नानक ने ‘शून्य’ का प्रयोग न करके ‘एक’ का प्रयोग किया है क्योंकि ‘एक’ भू का, अस्तित्व का प्रतीक है. इसका अर्थ है कि गोचर-अगोचर सब उसी ‘एक’ का प्रसार है.

सूफी दर्शन में इस बिंदु को तीन आयामों के माध्यम से बयान किया गया है. इसको फल्सफ़ा-ए-जब्रो-कद्र कहते हैं. सूफियों का पहला विश्वास यह है कि मनुष्य नितांत असहाय जीव है. इस विश्वास को ‘जब्र’ कहते हैं. दूसरी धारणा यह है कि प्रभु हम सबका, समस्त जड़-चेतन का स्रष्टा है परंतु अपने कर्मों के लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं. इस धारणा को ‘कद्र’ कहा जाता है. तीसरी अवस्था यह है कि हमारे समस्त कर्मों का मालिक ईश्वर है परंतु अपने कर्मों का कारण हम स्वयं हैं. इसे ‘बैनुल जब्रो-कद्र’ कहते हैं. गुरुवाणी में इन तीनों धारणाओं की अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है.

गुरु नानक से लेकर गुरु गोविंद सिंह तक गुरुओं का जो प्रेम सम्बंध सूफियों के साथ रहा है और उनके बीच जो संवाद निरंतर चलता रहा है, उसके प्रकाश में देखें तो हमें गुरुवाणी में सूफियों की शब्दावली भी दिखाई देती है और कतिपय इस्लामी मान्यताएं भी नज़र आती हैं. गुरु नानक की ‘वाणी’ में उनका ब्रह्म (अकाल पुरख) रहीम भी है, परवर दिगार भी; करीम भी है, बेपरवाह भी; कादिर भी है, रब भी; दाना भी है, बीना भी.

सो करता कादिर करीम
दे जीआ रिजकु सबाही.

❑

गरीबी और गंदगी

भारत में भावात्मक एकता के प्रश्न पर मैंने कई दृष्टियों से सोचा है. धर्म भावात्मक एकता का आधार नहीं बन सका, यह तो प्रत्यक्ष ही है. उसके चलते देश के दो टुकड़े हो गये. जातियां अलगाव का समर्थ साधन रही हैं. भाषा को लेकर जो तू-तू, मैं-मैं मची है, वह कहने की चीज़ नहीं. वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान में भी पर्याप्त अंतर है. फिर भावात्मक एकता का आधार क्या हो? और तब मुझे दो ही आधार दिखाई देते हैं– गरीबी और गंदगी. और किसी आधार पर भारत की भावात्मक एकता सम्भव हो या न हो, इन दोनों आधारों पर वह सम्भव हो जाती है. कन्याकुमारी से कश्मीर तक और असम से गुजरात तक आप एक जैसी गरीबी और गंदगी देखेंगे.

– देवेंद्रनाथ शर्मा

गीता जयंती

सतत कर्म साधना ही कर्मयोग है

● डॉ. राजाराम गुप्ता

कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है.

उठना, बैठना, सोना, खाना-पीना, वार्तालाप करना, लिखना-पढ़ना, व्यावसायिक या नौकरी के कार्य करना, चिंतन करना, सोच-विचार करना आदि तन-मन की जितनी क्रियाएं हैं, क्रिया-कलाप हैं, वे सभी कर्म हैं.

स्पष्ट है कि कर्म सभी करते हैं, पर कर्म कैसे करना, किस प्रकार, किस विधि, किस युक्ति, किस सलीके, किस भाव से कर्म सम्पन्न करना यह हर एक मनुष्य को नहीं आता. कर्म की गति गहन है (गहना कर्मणोगति: – गीता) अतएव हर व्यक्ति को कर्म की कीमिया (रसायन विद्या) से परिचित होना चाहिए. कर्म विशेष की सही शैली का ज्ञान मनष्य को होना चाहिए.

कर्म को सही तरीके, सही भाव, सही मन से किये जाने पर परिणाम तो अनुकूल एवं सकारात्मक आते ही हैं, कर्त्ता को आत्मसंतुष्टि भी मिलती है एवं यश-गौरव भी मिलता है. यह त्रिआयामी फल जो कर्म के फलस्वरूप प्राप्त होता है, वह जिस क्रिया विधि से मिलता है उसे ही कर्म-कौशल कहते हैं.

एक ही कलाकृति को अलग-अलग कलाकार आकार प्रदान करते हैं, किंतु एक कलाकार की कृति शेष कलाकारों की अपेक्षा अत्यधिक सुंदर, आकर्षक एवं जीवंत लगती है. ऐसा क्यों? ऐसा उस कलाकार के कर्म कौशल के कारण सम्भव होता है. उस कलाकृति में उसने अपनी कला, समर्पण, भाव, आराधना यहां तक कि अपना सर्वस्व लगा दिया है. यही है कर्म का कौशल. एक गृहिणी बहुत सुंदर स्वादिष्ट भोजन बनाती है, एक शिक्षक अन्य शिक्षकों की तुलना में बहुत अच्छा पढ़ाता है, एक संगीतज्ञ एक नर्तक बहुत अच्छी प्रस्तुति देता है, एक शासक बहुत अच्छा शासन चलाता है, एक खिलाड़ी बहुत अच्छा खेलता है, तो यह सब उन साधकों की कर्मसाधना, कर्म कौशल के फलस्वरूप होता है. कोई भी कर्म हो छोटा या बड़ा उसमें निखार कर्म करने वाले के

कौशल के कारण आता है. कर्म कौशल आपको उस क्षेत्र में शीर्ष पर विराजित करता है, जिससे आपको दुनिया में धन, यश, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान सब कुछ मिलता है और आप इतिहास में अमर हो जाते हैं.

कर्म को पूरी रुचि, समर्पण, निष्ठा एवं ईमानदारी से किया जाना चाहिए. जो भी काम आप कर रहे हैं, उसे पूरी तल्लीनता, पूरे मन से करें. उस कर्म में डूब जाएं. वह कर्म आपको संतुष्टि एवं आनंद प्रदान करे. उसको करते समय न तो आपको भार मालूम पड़े और न ही किसी प्रकार की ऊब महसूस हो. वह आपके उल्लास, उत्साह एवं प्रसन्नता में अभिवृद्धि करे.

कर्म के बारे में अर्जुन से सम्वाद करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते संगोऽस्त्वकर्मणि।।
(गीता-2/47)

-कर्म करने में तू स्वतंत्र है, किंतु उसके परिणाम प्राप्त करने में तू स्वतंत्र नहीं. अत: कर्म फल के निमित्त कर्म करने वाला मत बन तथा कर्म को त्यागने वाला भी मत बन अर्थात् अकर्मण्य बनकर मत बैठ.

मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने तक ही सीमित है, उसके फल प्राप्ति में नहीं. फल अवश्य मिलेगा, परंतु कर्म की प्रकृति, कर्त्ता के श्रम, उसके भाव को ध्यान में रखकर. मनुष्य अपराध करने में स्वतंत्र है, परंतु दंड पाने या न पाने में स्वतंत्र नहीं. न्याय पालिका जो दंड देगी उसे भुगतान पड़ेगा. खेती करने, व्यवसाय करने, पढ़ने-परीक्षा देने में व्यक्ति स्वतंत्र है, परंतु उसका परिणाम स्वयं के मन माफिक प्राप्त करने में नहीं. इनके सम्पन्न होने में अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियां, श्रम-मेधा, भाव आदि परिणाम की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं. अतएव कर्मठता से कर्म करने के बाद जो भी परिणाम सामने आता है, उसे स्वीकार करो. परिणाम अनुकूल आया हो तो इठलाओ मत और यदि प्रतिकूल आया हो तो निराश-हताश मत होओ, पुन: प्रयास करो. दोनों ही स्थितियों में आगे कर्म जारी रखो, क्योंकि कर्म ही जीवन है.

व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति कर्मों से ही होती है. जिस समाज एवं जिस देश के नागरिक कर्मठ एवं कर्म के प्रति समर्पित होते हैं, वे समाज, वे देश उन्नति के शिखर पर पहुंचते हैं और जहां के नागरिक प्रमादी, आलसी और कामचोर होते हैं वह देश कभी प्रगति नहीं कर पाता और वहां चारों ओर गरीबी, निर्धनता एवं अभावों की स्थिति बनी रहती है. इसी मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्य को निरंतर कर्मरत रहने, कर्म से जुड़े रहने, कर्म की आराधना करने का आह्वान किया है.

कर्म में कुशलता प्राप्त करने के लिए कर्म को पूजा समझकर करना चाहिए. कर्म में ऐसे डूब जाएं, ऐसे खो जाएं, तेसे तन्मय हो जाएं कि आपको अपने होने का भान ही न रहे. केवल कर्म होता दिखे, कर्त्ता खो जाये. कर्म से ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लेना ही सच्चा कर्मयोग है. श्रीकृष्ण ने कर्म एवं भक्ति के समन्वय का सुंदर सूत्र दिया है. वे अर्जुन से कहते हैं– 'मामनुस्मर युध्य च' अर्थात मुझे स्मरण करते हुए युद्ध (कर्म) कर. तात्पर्य यह है कि कर्म करते हुए भगवान को स्मरण करते चलो. ऐसा करने से आपकी भक्ति भी होती रहेगी और कर्म भी चलता रहेगा. कर्म में रस आयेगा, आनंद की अनुभूति होगी, फल स्वरूप कर्म श्रेष्ठता से सम्पन्न होगा. कबीर ताना-बाना बुनते हुए भक्ति करते रहे. तिरुवल्लुवर साड़ियां बनाते रहे और साधना करते रहे. ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां कर्म और भक्ति साथ-साथ चलते रहे. हम और आप भी ऐसा कर सकते हैं.

हमारे देश भारत में आदर्श कार्य संस्कृति का अभाव है. कुछेक अपवादों को छोड़कर हमारे यहां कर्त्तव्यनिष्ठा समर्पण भाव, लगाव कर्म के प्रति नहीं है, यही कारण है कि कभी 'सोने की चिड़िया' कहा जाने वाला देश आज गरीबी एवं अभावों से जूझ रहा है. इस स्थिति के लिए हमारी अकर्मण्यता एवं निठल्लापन ही ज़िम्मेदार है. समाज एवं राष्ट्र को वैभव एवं गौरव वहां के निवासियों के कर्म ही प्रदान करते हैं. नागरिकों के श्रम-स्वेद से ही सम्पन्नता की फसलें लहलहाती हैं. जर्मनी एवं जापान द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका में तहस-नहस हो गये थे, किंतु वहां के नागरिकों के कर्म-कौशल, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं श्रम-साधना ने उन देशों के वैभव को पुन: प्रतिष्ठित किया और आज वे दुनिया में प्रगति के क्षेत्र में अग्रणी देशों में हैं. हमारे देशवासियों को 'कर्मयोग' की महिमा एवं महत्ता को समझना होगा और उसे आचरण में उतारकर कर्मठ बनना होगा तभी हमारा देश समृद्ध एवं समुन्नत हो सकेगा.

'फल में तेरा अधिकार नहीं है' ऐसा भगवान ने इसलिए कहा है कि यदि मनुष्य फल की ओर ही ध्यान लगाये रखेगा तो वह कर्म दत्त-चित्त होकर नहीं कर सकेगा. किसान अगर यही सोचता रहे कि बीज पता नहीं उगेगा कि नहीं तो वह बीज बोयेगा ही नहीं. विद्यार्थी यदि यह सोचता रहे कि पता नहीं पास हो भी सकूंगा कि नहीं, क्योंकि पढ़ाई है तो बहुत कठिन, तो वह पढ़ ही नहीं पायेगा. इसलिए कृष्ण कहते हैं कि आलस्य, फलासक्ति और अगर-मगर को छोड़ पूरी तल्लीनता से तू कर्म के बीज बोता चल, फिर देख जीवन में कल्याण की फसल लहलहाती है कि नहीं. कोई भी कर्म बिना फल दिए नहीं जाता, कुछ न कुछ देकर ही जाता है.

अतएव अर्जुन! तू पूरे कौशल के साथ कर्म किये जा.

सिद्धि-असिद्धि, सफलता-असफलता में बिना विचलित हुए मनुष्य को कर्म जारी रखने चाहिए. असफलता में हताश नहीं होना सफलता में उछलना नहीं. दोनों ही स्थितियों में सम-भाव रखते हुए कर्मरत रहना.

योगस्थ कुरु कर्माणि सङ्गंत्यत्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्यो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
(गीता-2/48)

हे धनंजय! तू आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ (कर्म से जुड़ा हुआ) कर्मों को कर क्योंकि समत्व ही योग कहलाता है. फल की ओर ध्यान न रखते हुए पूरी निष्ठा, समर्पण एवं ईमानदारी से कर्म करते रहो. मन को डांवाडोल नहीं होने देना. झंझटों को आया देख, काम बंद नहीं कर देना. कर्म यात्रा जारी रखना, कर्म से जुड़े रहना (कर्म-योग). समता में स्थित हुए कर्म करते रहना. यह समता-भाव आपको कर्म से जोड़े रखेगा. यह समता-भाव ही **कर्म-कौशल का आधार है. यही निष्काम कर्म योग है– समत्वं योग उच्यते.**

'गीता' कर्म ही कुशलता का एक और अभिनव सूत्र देती है– 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात कर्म से जुड़े रहना, कर्मरत रहना ही कर्म-कुशलता का फण्डा कर्म से जुड़े रहना है. योग का अर्थ होता है जोड़-जुड़ना. जब मनुष्य कर्म में पूरी तरह तन्मय हो जाता है, उसमें डूब जाता है, तो ऐसा कर्त्ता योग में स्थित कहा जाता है. इस स्थिति में कर्म बहुत अच्छी तरह सम्पन्न होता है और परिणाम श्रेष्ठ आते हैं.

गीता का पूरा दर्शन ही व्यक्ति को कर्मठ बनाने का है, कर्म में लगाने का है (कर्मयोग)। कर्म करते-करते अभ्यास में रत रहते-रहते व्यक्ति उस क्षेत्र में महारत हासिल कर लेता है. यह सतत कर्म-साधना ही कर्मयोग है और यही कर्म में शीर्ष सफलता प्रदान करता है. ❑

...तो लिखने का जी नहीं करता

'वाचिक कहना प्रशंसा नहीं, निंदा ही है मेरी. यह उद्योग अशोक जी (वाजपेयी) ने चला रखा था. व्याख्यान में कई बातें ऐसी सूझ जाती हैं जो अकेले कमरे में नहीं सूझतीं. ...मेरा अधिकांश समय पढ़ने में लगता है. नये से नये लेखक भी. समकालीनों को देखूं, पढ़ूं, इसके बिना रह नहीं सकता. अच्छा पढ़ने को मिलता है तो लिखने का जी नहीं करता.' **– नामवर सिंह**

शब्दों का सफ़र

सत्तू-प्रेम या सत्तू-आसक्ति

● अजित वडनेरकर

भारतीय खान-पान के चर्चे दुनिया भर में यों ही नहीं हैं. इसे बनाने की आसान विधियां, पौष्टिकता और ज़ायका ही इसे सबसे खास बनाता है. यही वजह है कि आम आदमी का सत्तू, दाल-बाटी, दाल-बाफले या लिट्टी-चोखा जैसे व्यंजन फुटपाथ से लेकर फाइवस्टार होटलों तक बनते और परोसे जाते हैं. **सत्तू** अपने-आप में पूरा आहार है. खास तौर पर अपने सुपाच्य गुण और ठंडी तासीर के चलते गर्मियों की शुरूआत से ही घरों में **सत्तू** का प्रयोग शुरू हो जाता है. भुने हुए अनाज, जैसे– गेहूं, जौ, मक्का के साथ भुने हुए चने को पीसकर बनाये गये चूर्ण को सत्तू कहते हैं. गांव-देहात की रसोई की अनिवार्य वस्तु है सत्तू. समझदार गृहस्थों के यहां सत्तू एक ज़रूरी आहार है. पोहा, उपमा से भी ज़्यादा गुणवान और जल्दी बननेवाला इंडियन फास्टफूड या चटपट रसोई. डब्बे में से सत्तू पाउडर निकालिए, पानी मिलाइए फिर नमक या शकर मिलाइए और पी जाइए.

किसी ज़माने में राहगीरों-बटोहियों का पसंदीदा आहार होता था सत्तू. सत्तू का इस्तेमाल लगभग समूचे भारत में होता रहा है. हिंदी, मराठी और पंजाबी में इसे सत्तू कहते हैं. सिंधी में इसका रूप है सांतु, कश्मीरी में यह सोतु है तो गुजराती, कुमाऊंनी में यह सातु कहलाता है और भोजपुरी समेत पूर्वी बोलियों में इसे **सतुआ** भी कहते हैं. **सत्तू** बना है संस्कृत के **सक्तु** या **सक्तुकः** से जिसका अर्थ है अनाज को भूनने के बाद उसे पीस कर बनाया गया आटा. प्राचीनकाल में भारत में जौ का प्रचलन अधिक था. गेहूं का इस्तेमाल बढ़ने के बाद सत्तू में इसकी अनिवार्यता भी बढ़ गयी. गेहूं के स्थान पर मकई का प्रयोग भी होता है. सामान्य तौर पर एक भाग चना और आधा भाग गेहूं और चौथाई भाग जौ को पानी में कुछ घंटों भिगोने के बाद सुखाया जाता है. फिर उसे भूनकर पीस लेते हैं. यही **सत्तू** कहलाता है.

संस्कृत के सक्तु या सक्तुक का जन्म हुआ है **सञ्ज्** या **संज्** धातु में **क्तिन्** प्रत्यय लगने से, जिसमें मिलने, जुड़ने, संयुक्त होने, संलग्न होने का भाव है. क्रम कुछ यों रहा होगा– सक्तुकः > सत्तुकः > सत्तुअ > सत्तू / सतुआ. इसी तरह

जकड़ना, चिपटना, चिपकना, सम्पर्क में आना आदि अर्थ भी इसमें निहित हैं. स्पष्ट है कि एक दूसरे में मिलाना, जोड़ना ही इसमें प्रमुख भाव हैं. सत्तू के अर्थ में किन्हीं अनाजों को आपस में मिलाने और पीसकर एकाकार करने में **सञ्ज्** धातु में निहित भाव स्पष्ट है. सञ्ज् या संज् धातु का **ज** दरअसल संस्कृत की **यु** धातु का अगला रूप रहा होगा. संस्कृत की **यु** धातु भारोपीय भाषा परिवार की **आदि** धातुओं में है जिसका विस्तार भारतीय भाषाओं के अलावा कई विदेशी भाषाओं में हुआ है. **यु** धातु में जुड़ने, जोड़ने का भाव है. युक्त, युग, जुग, जोड़ी, जुट्, संयुक्त, योग, जोग, संजोग, जुगाड़ जैसे अनेक शब्द इस मूल से निकले हैं. कुल मिलाकर **सत्तू** भी एक किस्म का जुगाड़ ही है. **य** वर्ण **ज** में ही तब्दील होता है, जैसे– **योग** से **जोग** का रूपांतर. **सञ्ज्** में इसी **यु** की अर्थछाया नज़र आ रही है. बहरहाल, सक्तु की तरह **सञ्ज्** धातु में **क्त** प्रत्यय लगने से **सक्त** भी बना है जिसमें जुड़ना, चिपकना, भक्त, सम्बंध होना, जैसे भाव हैं. सक्त का स्वतंत्र प्रयोग हिंदी में नहीं होता मगर इसमें **आ** उपसर्ग लगने से बने **आसक्त** का प्रयोग प्रेम, अनुराग, अनुरक्त होने के संदर्भ में खूब होता है. आसक्ति का अर्थ है किसी से प्रेम सम्बंधी जुड़ाव. **अनासक्त्ति** में वैराग्य या उदासीनता का भाव है. कुछ लोग **सत्तू** के मूल में सत्त्व देखते हैं. सत्त्व से सत्तु का ध्वनिसाम्य ज़रूर है पर अर्थसाम्य नहीं. एक आहार के तौर पर सत्त्व के सार जैसे अर्थ पर सत्तू को तौलना उचित नहीं होगा. सत्त्व का देशज रूप सत्त या सत बनेगा और ये रूप देशी बोलियों में प्रचलित भी है. सक्तु में विभिन्न पदार्थों के सम्मिलन का भाव महत्त्वपूर्ण है. मोनियर विलियम्स और वाशि आप्टे के कोश में भी **क्तु** का अभिप्राय सत्तू ही है.

सत्तू के विविध व्यंजन बनते हैं– सुगंधित बनाकर शर्बत की तरह पेश किया जाता है, घोलकर, ठंडा कर आइसक्रीम की तरह खाया जाता है, पारम्परिक तरीकों में सत्तू के गाढ़े या पतले घोल में नमक, जीरावण डालकर पिया जाता है. ऊपर से नींबू भी डाल लें तो आनंदम् आनंदम्. गुड़ या शक्कर डालकर इसका जायका बदला जाता है. लिट्टी चोखा की भरावन (स्टफिंग) भी सत्तू से ही होती है. सत्तू की पीठी की कचौरी या परांठा भी बनता है. सत्तू में चने का अनुपात और अनाज की सिंकाई सही न हो, तो स्वाद नहीं आता.

(शब्दों का सफ़र, राजकमल प्रकाशन, से साभार)

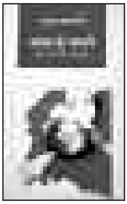

समय के सामने

अशोक वाजपेयी

वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर
पॉलिटेक्निक कॉलेज के पास,
बीकानेर-334003 मूल्य-225 ₹

सुपरिचित लेखक द्वारा नियमित रूप से लिखे स्तम्भ 'कभी-कभार' में प्रकाशित लेखों का यह संकलन है. लेखक की अपनी विचारधारा है जिससे असहमत हुआ जा सकता है लेकिन ये लेख हर पाठक को कहीं न कहीं चिंतन के लिए खुराक दे जाते हैं. इनमें अपने समय-समाज-राजनीति-संस्कृति को समक्ष रखकर समकालीन घटनाओं पर विचार प्रकट किया गया है.

यायावर हैं आवारा हैं बंजारे हैं

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-466001,
म.प्र. मूल्य- 150₹

यह पुस्तक लेखक की इंग्लैंड, कैनेडा और अमेरिका की यात्राओं का संस्मरण है. कथाकार पंकज सुबीर की कहन में कथात्मकता यहां भी झलकती है. इस संस्मरण में लेखक ने इन जगहों के खान-पान, यातायात, बाज़ार भौगोलिक परिस्थितियों के साथ ही अपने लेखक मित्रों के साथ-संवाद को भी रोचक ढंग से लिखा है. कहानियों से इतर अपने लोकप्रिय लेखक के जीवन से रूबरू होने ज़रिया है यह पुस्तक.

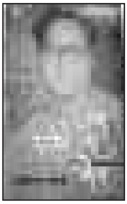

जग दर्शन का मेला

शिवरतन थानवी

राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी
सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी
दिल्ली- 110002 मूल्य-295 ₹

यह पुस्तक लेखक द्वारा 2009 से 2013 के बीच लिखी डायरी का चुनिंदा संकलन है. शिक्षा के तमाम सिद्धांतों के साथ नयी बहसों को समझकर, अपनी स्वतंत्र सोच को सामने रखने वाली इस पुस्तक को पढ़ना शिक्षा के वास्तविक आशय, मूल्य-बोध और व्यावहारिक समस्याओं के निजी अनुभव पर आधारित आकलन से गुजरने जैसा है. शिक्षा जगत और डायरी का आस्वाद एकसाथ.

घुरिया

मीना पाठक

अमन प्रकाशन, 104-ए/80 सी,
रामबाग, कानपुर- 208012
मूल्य-225 ₹

बारह कहानियों के इस संग्रह की कुछ कथाओं में स्त्रीमन का स्वप्नलोक अपनी सम्पूर्णता के साथ प्रकट हुआ है. इनमें नायिकाएं कहीं-कहीं बेहद बोल्ड, सशक्त व स्वाभिमानी हैं तो कहीं बेहद दबी-कुचली व वंचित हैं. अपनी हर दशा व रूप में वे पाठक को आकर्षित करती हैं. कुछ कहानियां ग्राम्य जीवन के सहज, स्वाभाविक सम्बंधों-भावों का आस्वाद कराती हैं.

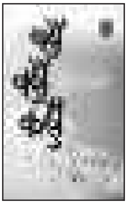

यहां वहां कहां

दीप्ति मिश्रा

वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए,
दरियागंज, नयी दिल्ली-
110002 मूल्य 350₹

यह काव्य संग्रह दो खंडों में विभक्त है– कविता खंड और ग़ज़ल खंड. ग़ज़लों के केंद्र में अस्तित्व को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है. कवयित्री की अस्तित्ववादी सोच यहां पर साफ दिखाई देती है. इनमें नये भारत की औरतों को उकेरा गया है जो पूरे आत्मसम्मान के साथ जीवित हैं और अपने अस्तित्व की लड़ाई पूरी ताकत से लड़ रही हैं. इनमें कविता के साथ कथा-तत्व एवं नाट्य-तत्व भी उपस्थित है.

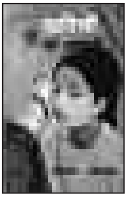

वारिसों की ज़ुबानी

संपादन - गीताश्री

शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस
स्टैंड, सीहोर-466001, म.प्र.
मूल्य- 200₹

यह पुस्तक रेखाचित्रों का संकलन है. इसमें संकलित महिला रचनाकारों के रेखाचित्र उनकी दादी, नानी या मां के हैं. सम्पादिका का उद्देश्य इन रचनाकारों द्वारा उनके जीवन का हिस्सा रही उन महिलाओं की व्यक्तिगत, सामाजिक स्थिति को सामने लाना है जो समाज की पितृसत्तात्मक सोच का शिकार हुई थीं. उन्हीं की प्रेरणा व प्रयासों से कहीं न कहीं आज की सशक्त महिलाओं की नींव तैयार हुई.

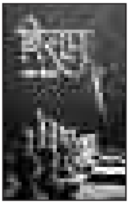

बिसात

राकेश बिहारी

शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस
स्टैंड, सीहोर-466001 म.प्र.
मूल्य-200₹

लेखक की आठ कहानियों का यह दूसरा संग्रह जहां एक ओर मानवीय प्रपंचों को उद्घाटित करता है वहीं दूसरी ओर मानवीय सम्बंधों की सघन पड़ताल भी करता है. इन कहानियों में हमारे समय, समाज का वर्तमान अपने अतीत की जड़ों और भविष्य के संकेतों के साथ झलकता है. विचार और जीवनानुभूति के बारीक धागों से बुनी ये कहानियां यथार्थ को देखने-परखने का अवसर प्रदान करती हैं.

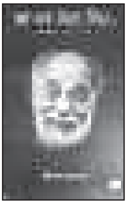

उम्र भर देखा किए...

विजय अरोड़ा

इंडिया नेट बुक्स, सी-122,
सेक्टर-19, नोयडा
मूल्य - 200 ₹

'उम्र भर देखा किए...' कथाकार सूरज प्रकाश को समझने का एक अवसर है. यह उनके भाई द्वारा लिखी उनकी जीवनी है जो बताती है कि सोना तप कर ही कुंदन बनता है. वस्तुत: यह पुस्तक एक रचनाकार की संघर्ष-गाथा है. यह रोचक तो है ही, यह संदेश भी देती है कि आखिरी कोशिश के बाद एक और कोशिश ही सफलता का मंत्र है. पुस्तक रोचक तो है ही, पठनीय भी है.

भवन समाचार

भगवद् गीता पाठ प्रतियोगिता

श्री श्री रविशंकर विद्या मंदिर, बोरीवली (पूर्व), **मुंबई** ने संस्कृत सप्ताह समारोह के एक भाग के रूप में एक ऑनलाइन भगवद् गीता पाठ प्रतियोगिता आयोजित की. श्री कृष्ण कुमार झा (सहायक, परीक्षा सचिव) और डॉ. शिवगोपाल मिश्रा (परीक्षा सहायक, भवन के संस्कृत परीक्षा विभाग) ने उक्त प्रतियोगिता में निर्णायक थे. इसमें चौदह छात्रों ने भाग लिया. श्री के. के. झा ने अपने वक्तव्य में संस्कृत सीखने के महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा की. डॉ. एस.जी. मिश्रा ने अपने भाषण में छात्रों को संस्कृत अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया, और संक्षेप में भारतीय विद्या भवन की संस्कृत शिक्षा से सम्बंधित गतिविधियों की जानकारी दी. श्री श्री रविशंकर विद्या मंदिर में संस्कृत की शिक्षक और भवन के सरल संस्कृत परीक्षा केंद्र की नियंत्रक श्रीमती सुमन पंड्या ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की.

श्रद्धांजलि

कोयंबटूर केंद्र ने श्री पी.आर. कृष्णकुमार वारियरजी को श्रद्धांजलि अर्पित की जिनका विगत दिनों निधन हो गया था. कोयम्बटूर केंद्र ने पद्मश्री पीआर कृष्णकुमार वारियरजी को कुलपति मुंशी पुरस्कार का सर्वोच्च सम्मान, आयुर्वेदिक चिकित्सा और भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए प्रदान किया था. श्री अरुण शौरी (प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक और अर्थशास्त्री) समारोह के मुख्य अतिथि थे. ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे.

LEARN THE LANGUAGE OF THE HEAVENS

Bharatiya Vidya Bhavan

Jyotisha Bharati

(Formerly Bombay Astrological Society – Estd. 18th Dec. 1892)
HazarimalSomani College, 4thFlr., R. No. 45,
K. M. Munshi Marg, Chowpatty, Mumbai – 400 007.

ADMISSIONS OPEN FOR

JYOTIRVID

CERTIFICATE COURSE IN ASTROLOGY (Duration – 2 Years)

FACILITIES AVAILABLE FOR RESEARCH
& OTHER ADVANCED COURSES

Language: **English or Gujarati** * Eligibility: **HSC or Equivalent**

For Admission and Enquiry, Please Contact:

PROF. SHARAD C. JOSHI (Vice Principal)
through email:- bhavanmumbaijyotishbharati@gmail.com

or

MS. URMI PASAD (Teacher) on:

Mob. No. 8082318318 during 11.00 a.m. – 5.00 p.m.

Only on Tuesdays, Wednesdays and Fridays

Lectures Every Sunday (10.30 am – 5.00 pm) from 3rd January 2021

अंतर्राष्ट्रीय ओलंपियाड में भारत का प्रतिनिधित्व

भवन विद्यालय, **पंचकूला** के बारहवीं कक्षा के छात्र उदित सांघी को अंतर्राष्ट्रीय ओलंपियाड फॉर इंफॉर्मेटिक्स के लिए भारतीय टीम में स्थान मिला है. यह स्कूल के छात्रों के लिए सबसे प्रतिष्ठित प्रोग्रामिंग प्रतियोगिता है. भारत हर साल जनवरी में आयोजित होने वाले इंफॉर्मेटिक्स में इंडियन नेशनल ओलंपियाड के टॉप स्टूडेंट्स को शॉर्टलिस्ट करके अपनी टीम चुनता है. इस साल प्रदर्शन के आधार पर 32 छात्रों को शॉर्टलिस्ट किया गया था. 3 दिन की कड़ी प्रतियोगिता के बाद, 32 छात्रों को 5 घंटे की अवधि में प्रोग्रामिंग की तीन समस्याओं को हल करना था. उदित का नाम विजेता की सूची में शामिल हो गया. उदित ने पिछले दो वर्षों में भी अच्छा प्रदर्शन किया था और 2018 और 2019 में टीम के चयन के लिए शॉर्टलिस्ट किया गया था. लेकिन दोनों वर्षों में, वह प्रतियोगिता में 5 वें स्थान पर आया, जिससे भारतीय टीम में शामिल होने का मौका नहीं मिला. उदित को प्रोग्रामिंग और मैथ्स में गहरी रुचि है. 5 वर्ष की उम्र में भी, वह क्रिकेट रन की दरों की गणना कर सकते थे और बहुत कठिन गणितीय सवालों को हल कर सकते थे. उन्हें आठवीं कक्षा में प्रोग्रामिंग में रुचि थी. उन्होंने प्रोग्रामिंग में कई पुरस्कार जीते हैं, जिसमें एशिया-पैसिफिक इंफॉर्मेटिक्स ओलंपियाड, दो रजत पदक और गूगल कोड-इन शामिल हैं.

श्रद्धांजलि

श्री रोहितभाई मेहता (भूतपूर्व अध्यक्ष, भवन **अहमदाबाद केंद्र**) का विगत दिनों निधन हो गया. ऊर्जावान व्यक्तित्व के धनी और सच्चे गुरु, श्री रोहितभाई ने लगभग 40 वर्षों तक केंद्र के अध्यक्ष के रूप में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया. संगठन के विकास में उनकी बड़ी भूमिका थी. ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे.

भवन पंचकुला केंद्र की पूर्व-छात्र की उपलब्धि

भवन **पंचकुला केंद्र**, आईआईटी बॉम्बे में तीसरे वर्ष में अध्ययन कर रही कृति शर्मा ने पूरे देश को गौरवान्वित किया है. उसने ग्रह को प्रभावित किये बिना पृथ्वी के निकटतम क्षुद्रग्रह के फ्लाईबाई की खोज की! कैलटेक में ज़्विकी ट्रांसिएंट फैसिलिटी के डेटा का उपयोग करके फ्लाईबाई के कुछ ही घंटों बाद यह खोज की गयी थी. कृति IITB विंग का एक हिस्सा है. कैलटेक सकल विकास का नेतृत्व करता है जो वेधशालाओं के ग्लोबल रिले के लिए बना है. यह खगोल विज्ञान में एक अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक सहयोगी परियोजना है जो सुपरनोवा, न्यूट्रॉन सितारों या ब्लैक-होल विलय और निकटवर्ती क्षुद्रग्रह जैसे ब्रह्मांड में तेज़ी से बदलती घटनाओं के भौतिकी का अध्ययन कर रही है. इस समूह में भारत, ताइवान, ब्रिटेन और अमेरिका सदस्य हैं जो सामूहिक रूप से क्षुद्रग्रहों को खोजने का काम करते हैं.

संस्कृत दिवस समारोह - मुंबई केंद्र

'कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विशलविद्यालय, रामटेक' ने संस्कृत दिवस मनाने के लिए एक वेबिनार समारोह का आयोजन किया. महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री भगत सिंह कोशियारी ने समारोह का उद्घाटन किया. समारोह में प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वान प्रो. वी. कुटुम्बा शास्त्री अतिथि थे. श्री रमेश पोखरियाल (शिक्षा मंत्री, भारत सरकार) ने मुख्य अतिथि के रूप में समारोह में भाग लिया. श्री उदय सामंत, (उच्च और तकनीकी शिक्षा मंत्री, महाराष्ट्र सरकार) समारोह में विशेष अतिथि थे. श्री कृष्ण कुमार झा, (सहायक परीक्षा सचिव, भवन संस्कृत परीक्षा विभाग) ने संस्कृत शिक्षा के महत्व और भारतीय संस्कृति और संस्कृत शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारतीय विद्या भवन की विभिन्न गतिविधियों पर एक संक्षिप्त भाषण दिया. प्रो. श्रीनिवास वराखेड़ी, (कुलपति, कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक) ने समारोह की अध्यक्षता की. डॉ. के.के. पांडे, (डीन और अध्यक्ष ज्योतिष विभाग) ने कार्यक्रम का संचालन किया.

संस्कृति समाचार

सप्रे संग्रहालय में बाल साहित्य प्रभाग

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल में बाल साहित्य का नया प्रभाग बनाया गया है. इस संग्रह में दो हज़ार से ज़्यादा किताबें और पांच हज़ार से ज़्यादा बाल पत्रिकाएं संग्रहीत हैं. इनमें बाल उपन्यास, बाल कहानियां और बाल कविताएं और बाल नाटकों के साथ-साथ बच्चों के लिए रोचक और ज्ञान बढ़ाने वाली विविध सामग्री मौजूद है. बाल साहित्य पर हुई पीएच.डी. की थीसिस, यूनिसेफ की रिपोर्ट, बालोपयोगी ज्ञानकोश और अन्य प्रकाशन भी संग्रह में शामिल हैं.

सप्रे संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक विजयदत्त श्रीधर ने बताया कि प्रभाग में बाल साहित्यकार डॉ. परशुराम शुक्ल का जीवन भर का संग्रह है इसीलिए इसका नाम डॉ. परशुराम शुक्ल बाल साहित्य प्रभाग रखा गया है. जनवरी 2021 से इस प्रभाग को बच्चों के अध्ययन के लिए खोल दिया जाएगा. यहां सौ से ज़्यादा हिंदी के बाल साहित्यकारों की किताबें उपलब्ध हैं. दो सौ से अधिक किताबें तो खुद डॉ. परशुराम शुक्ल द्वारा लिखी गयी हैं. इनमें बाल साहित्य के अलावा जलचर, नभचर और थलचर तीनों कोटि के प्राणियों पर डॉ. शुक्ल की पुस्तकें विशिष्ट हैं.

रामचंद्र नंदवाना स्मृति सम्मान

स्वतंत्रता-सेनानी रामचंद्र नंदवाना के जन्म शताब्दी वर्ष में उनके नाम पर दिये जाने वाले सम्मान के लिए बरेली के निवासी सुधीर विद्यार्थी को उनकी चर्चित कृति ‘क्रांतिकारी आंदोलन : एक पुनर्पाठ’ के लिए दिया गया है. चयन साहित्यकार काशीनाथ सिंह, राजेश जोशी एवं डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने किया. पुरस्कार देने वाली संस्था ‘सम्भावना’ के अध्यक्ष डॉ. के.सी. शर्मा ने इसकी घोषणा की है.

युवा कवि सम्मेलन

साहित्य एकादमी की ‘वेबलाइन साहित्य शृंखला’ के अंतर्गत युवा कवि सम्मेलन का लाइव आयोजन किया गया. सर्वश्री सौरभ अनंत, नेहा नरूका कुमार मंगलम, अनुपम सिंह एवं सुघोष ने अपनी कविताएं प्रस्तुत कीं. संचालन श्री अनुपम तिवारी ने किया.

‘पहले भारत को अपना बनायें’

पत्रकार माणिकचंद्र वाजपेयी पर केंद्रित पुस्तक का विमोचन नयी दिल्ली के इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरसंघचालक श्री मोहन भागवत के हाथों हुआ. पुस्तक का सम्पादन डॉ. सच्चिदानंद जोशी और प्रो. संजय द्विवेदी ने किया है. इस अवसर पर श्री मोहन भागवत ने कहा कि विश्व को अपना बनाना है तो पहले भारत को अपना बनाना पड़ेगा. हमारे जीवन में भारत झलकना चाहिए. श्री प्रकाश जावडेकर ने श्री वाजपेयी को राष्ट्रीय पत्रकारिता का ‘ब्रांड’ बताया. समारोह में श्री रामबहादुर राय, प्रो. कप्तानसिंह सोलंकी भी उपस्थित थे. कार्यक्रम का संचालन डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने किया तथा भारत प्रकाशन के श्री अरुण गोयल ने आभार व्यक्त किया.

लेखक सेवा-निवृत्त नहीं होते

प्रसिद्ध लेखक रस्किन बांड का कहना है कि लेखक कभी सेवा-निवृत्त नहीं होते और यदि उन्हें हर दिन लिखने की आज़ादी न हो तो जीवन दूभर हो जाता है. सत्तर साल के निरंतर लेखन कर रहे बाण्ड की नयी किताब ‘हाउ टू बी ए राइटर’ आयी है जिसमें उनके सफल लेखक-जीवन की झलक है. उनका कहना है कि ‘अपने विचारों को शब्दों में ढालने के काम को मैं बहुत पसंद करता हूं. अगर लिखने की आज़ादी न होती तो यह जीवन दूभर हो जाता.’

उनका कहना है कि एक कलाकार की ज़िंदगी पर पकड़ कमज़ोर नहीं होनी चाहिए. ‘हम बूढ़े होने पर सुरक्षा के लिहाज से आरामदायक ज़िंदगी गुज़ारना चाहते हैं, लेकिन लेखक कभी सेवा-निवृत्त नहीं होते’.

‘कंचनजंघा’ का प्रकाशन

सिक्किम दिवस के अवसर पर पूर्वोत्तर भारत को समर्पित ‘कंचनजंघा’ ई-जर्नल के प्रवेशांक के लोकार्पण के अवसर पर सिक्किम विश्वविद्यालय के डॉ. प्रदीप त्रिपाठी ने इस प्रयास को पूर्वोत्तर भारत की साहित्य-संस्कृति को वैश्विक पटल पर लाने का उपक्रम बताया. उत्तर पूर्व की भाषाओं के साथ सामंजस्य एवं उनके प्रति सम्मान भाव रखते हुए ‘कंचनजंघा’ का उद्देश्य हिंदी भाषा से अधिकाधिक लोगों को जोड़ने एवं उनमें भाषा के प्रति रुचि पैदा करना रहेगा. पत्रिका में पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित सामग्री को विशेष स्थान दिया गया है.

भवन्स
नवनीत

अगला अंक

मशीन की ताकत से इतराया
आदमी कब मशीन का दास बन
गया, पता ही नहीं चला

●

बात यहीं नहीं रुकी
धीरे-धीरे मनुष्य स्वयं मशीन
बनता चला गया

●

संवेदनहीनता मनुष्य पर
हावी होती चली गयी

●

करोना-काल ने इस
संवेदनहीनता को एक
खतरनाक आयाम दे दिया है
क्या हम इस खतरे को समझ रहे हैं?
'नवनीत' का वार्षिकांक

मशीन होती मनुष्यता

इस खतरे को समझाने की
एक कोशिश है
अपनी प्रति सुरक्षित करालें

जनवरी 2021

Printed and Published by P.V. Sankarankutty on behalf of Bharatiya Vidya Bhavan, printed at Maoolee Prints & Arts, Gala No. 9/A, Ground Floor, Byculla Service Industrial Estate, D.K. Cross Road, Byculla (East), Mumbai - 400 027 and published for Bharatiya Vidya Bhavan, Plot No. 33/35, Gr. + 4 Floor, K.M. Munshi Marg, Chowpatty, Mumbai - 400 007. **Editor : Vishwanath Sachdev**

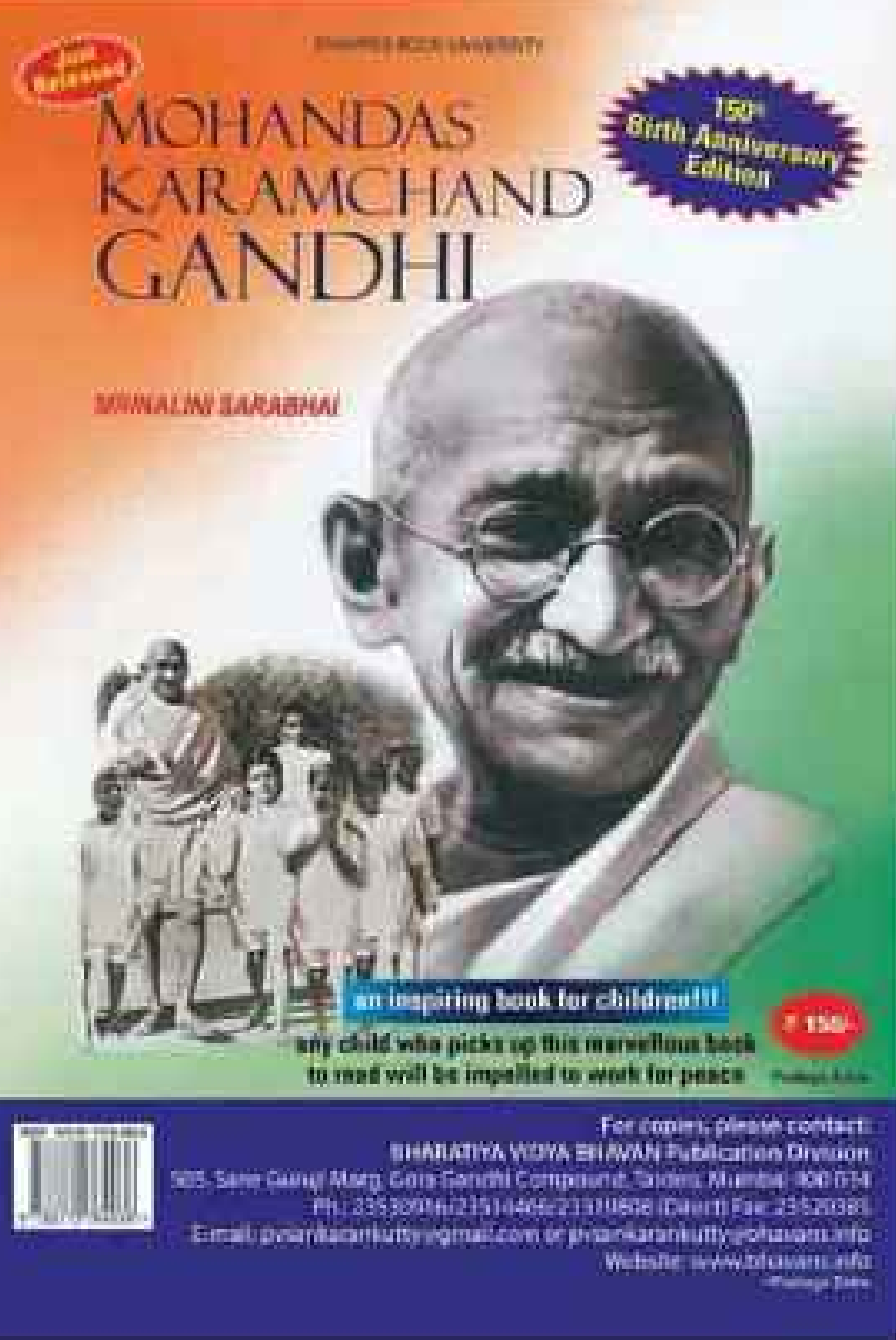

Just Released

BHAVAN'S BOOK UNIVERSITY

MOHANDAS
KARAMCHAND
GANDHI

150th Birth Anniversary Edition

MRINALINI SARABHAI

an inspiring book for children!!!

any child who picks up this marvellous book
to read will be impelled to work for peace

₹ 150/-

For copies, please contact:
BHARATIYA VIDYA BHAVAN Publication Division
505, Sane Guruji Marg, Gola Gandhi Compound, Tardeo, Mumbai 400 034
Ph.: [illegible] (Direct) Fax: [illegible]
Email: pvsankarankutty@gmail.com or pvsankarankutty@bhavans.info
Website: www.bhavans.info

Total Page 148 Date of Publication : 23rd of every previous month
RNI. : MAHHIN/2015/62469 Registration No. : MCW/330/2018-20
Posted on Mumbai Patrika Channel Sorting Office, Mumbai - 400001
on 27th and 28th of every previous month.

आपका राज्य करे बेहतर निर्यात
हमारी शोधपरक नीतियों के साथ।
केरल
आंध्र प्रदेश
बिहार
भारतीय राज्यों पर
हमारे कुछ
नए शोध
अध्ययन
पंजाब
उत्तर प्रदेश
राजस्थान
मध्य प्रदेश
यह नक्शा केवल रूपक के तौर पर इस्तेमाल किया गया है। इसके अलावा इसका और कोई प्रयोजन नहीं है।

भारत अपनी विविधता के कारण एक खास पहचान रखता है क्योंकि हर राज्य में है कुछ खास। इंडिया एक्ज़िम बैंक में, हम चार दशकों से भारत के निर्यातों को सुगम बनाने का काम कर रहे हैं और इसके लिए हमारी एक रणनीति है राज्य सरकारों के साथ मिलकर काम करना। राज्य स्तर पर निर्यातों को बढ़ावा देना, देश और बैंक के लिए उच्च प्राथमिकता रखता है। हमने विभिन्न राज्यों का एक्सपोर्ट प्रिपेयर्डनेस इंडेक्स 2020 कुशलतापूर्वक तैयार किया है। साथ ही हम विभिन्न राज्यों से निर्यातों को बढ़ाने के लिए उन राज्य सरकारों के साथ मिलकर निर्यात रणनीतियां भी बनाते रहे हैं।

www.eximbankindia.in | हमें फॉलो करें

इंडिया
एक्ज़िम
बैंक